वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला का पुष्प नं. 56
ISBN 978-93-80353-05-0

जैन बाल भारती

(भाग-1)

– रचयित्री –

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि
श्री ज्ञानमती माताजी

पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी के पावन सानिध्य में 21 दिसम्बर 2008 को भारत की राष्ट्रपति महामहिम श्रीमती प्रतिभा देवीसिंह पाटील के करकमलों द्वारा उद्घाटित ''विश्वशांति अहिंसा सम्मेलन'' के अनन्तर पूज्य माताजी द्वारा घोषित 'शांति वर्ष-2009' के अन्तर्गत प्रकाशित

-प्रकाशक-
दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान
जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.
फोन नं.- (01233) 280184, 292943
Website : www.jambudweep.org
E-mail : ravindrajain@jambudweep.org

चतुर्थ संस्करण	आश्विन शु. पूर्णिमा	मूल्य
2200 प्रतियाँ	शरदपूर्णिमा, 4 अक्टूबर 2009	20/-रु.

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान द्वारा संचालित

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमाला में दिगम्बर जैन आर्षमार्ग का पोषण करने वाले हिन्दी, संस्कृत, प्राकृत, कन्नड़, अंग्रेजी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं के न्याय, सिद्धान्त, अध्यात्म, भूगोल-खगोल, व्याकरण आदि विषयों पर लघु एवं वृहद् ग्रंथों का मूल एवं अनुवाद सहित प्रकाशन होता है। समय-समय पर धार्मिक लोकोपयोगी लघु पुस्तिकाएं भी प्रकाशित होती रहती हैं।

-: संस्थापिका एवं प्रेरणास्रोत :-

परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी

-: मार्गदर्शन :-

प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका श्री चन्दनामती माताजी

-: निर्देशन :-

धर्मदिवाकर पीठाधीश क्षुल्लकरत्न श्री मोतीसागर जी महाराज

-: सम्पादक :-

कर्मयोगी ब्र. रवीन्द्र कुमार जैन

सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

प्रथम संस्करण 1982-3300 प्रतियाँ, द्वितीय संस्करण 1992-1100 प्रतियाँ
तृतीय संस्करण 1996-5000 प्रतियाँ

कम्पोजिंग - ज्ञानमती नेटवर्क
जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर (मेरठ) उ.प्र.

सम्पादकीय

—कर्मयोगी ब्र.रवीन्द्र कुमार जैन

अच्छा नागरिक बनने के लिए संस्कारों की आवश्यकता होती है। आज स्कूल एवं कॉलेजों का वातावरण पाश्चात्य संस्कृति से इस प्रकार ओत-प्रोत हो चुका है कि बच्चों में धार्मिकता एवं नैतिकता का ह्रास दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है। ऐसी स्थिति में छोटी-छोटी शिक्षाप्रद कथाओं के माध्यम से बच्चों को संस्कारित करना आवश्यक है। इसी की पूर्ति के लिए यह 'जैन बाल भारती' नामक पुस्तक का सृजन पूज्य गणिनी आर्यिकारत्न श्री ज्ञानमती माताजी ने करुणा बुद्धि से किया।

इसके पूर्व भी पूज्य माताजी द्वारा लिखित बाल विकास की पुस्तकें चार भाग में प्रकाशित हुई हैं जो कि विभिन्न परीक्षा बोर्डों से मान्यता प्राप्त हैं और नैतिक शिक्षण के रूप में अनेक पाठशालाओं में पढ़ाई जा रही हैं।

इस पुस्तक में महापुरुषों से संबंधित कथाएँ भी दी गई हैं, जिनके पढ़ने के उपरान्त यदि बच्चे यह सोचें कि व्यक्ति महान कैसे बन सकता है तो निष्कर्ष निकलेगा कि महान बनने के लिए सच्चरित्र की आवश्यकता है, पुरुषार्थ की आवश्यकता है, धर्म की आवश्यकता है और आवश्यकता है बड़ों का आदर करने की। यदि बच्चे दुर्व्यसन में पड़ गये—जैसे चोरी करना, जुआ खेलना, माँस-अण्डे आदि खाना, तो जीवन बिगड़ जाता है और समाज में उच्च स्थान प्राप्त होना दुर्लभ हो जाता है। इसीलिए इस पुस्तक के पढ़ने वाले कोमल बुद्धि के बालकों से यही उपेक्षा है कि वे इससे कुछ अच्छाईयाँ ग्रहण करें, जिससे भगवान महावीर, राम और महात्मा गांधी जैसा आदर्श जीवन बन सके, तभी इस पुस्तक के प्रकाशन की सार्थकता होगी।

प्राक्कथन

—प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चंदनामती

बालहृदय कोमलता एवं निश्छलता का प्रतीक माना जाता है। वह शीघ्र ही कैमरे के समान वस्तुतत्व को ग्रहण करने में समर्थ होता है। बच्चा यदि सिनेमाघर में सिनेमा देखकर निकलता है तो उसके मुँह से फिल्मी धुनों के सरागी गीत सुनाई देते हैं, यदि सर्कस देखकर आता है तो कभी जोकर और कभी पहलवान की ऐक्टिंग करने लगता है, टी.वी. पर वीर बहादुरों की लड़ाई देखकर ढिसुम-ढिसुम की आवाज करते हुए वे भी अपनी वीरता का प्रदर्शन करने लगते हैं। इसी प्रकार यदि वही शिशु बाल्यकाल से ही धार्मिक एवं ऐतिहासिक कथानकों को अपने घर में सुनता है तो उसके जीवन में धार्मिकता आती है।

प्रस्तुत 'जैन बाल भारती' नामक पुस्तक जो भी बालक एक बार हाथ में ले लेता है, उसे पूरी पढ़े बिना नहीं छोड़ता, क्योंकि इसमें छोटे-छोटे कथानकों में बाल सुलभ शिक्षाएँ अंतर्निहित हैं। इस प्रथम भाग में शिक्षास्पद एवं रोमांचक 17 कथाएँ हैं। कथाओं में कहीं-कहीं संवाद के रूप में विषय को स्पष्ट किया गया है।

पूज्य गणिनी आर्यिकारत्न श्री ज्ञानमती माताजी इसकी लेखिका हैं। यद्यपि उनके द्वारा निर्मित दीर्घकाय ग्रंथों के समक्ष इस प्रकार की लघु पुस्तक देखकर पाठकगण कुछ दुविधा में पड़ जाते हैं उनके मन में सहज प्रश्न उठता है कि क्या इन्हीं ज्ञानमती माताजी ने इसे लिखा है ? किन्तु इसमें आश्चर्य की बात नहीं है पूज्य माताजी का हृदय एक व्यापक मातृहृदय है, वे अपने देश एवं समाज के बालकों तथा युवकों की आधुनिक रुचि से भी परिचित हैं। इसीलिए उन्होंने बच्चों के लिएइस प्रकार अनेक छोटी-छोटी पुस्तकें लिखी हैं तथा युवा पीढ़ी के लिए भी नई शैली केधार्मिक पुस्तकें, जैन भारती, ज्ञानामृत आदि शास्त्र बनाए हैं। विद्वत् जगत के लिए तो अष्टसहस्री से लेकर समयसार तक सैकड़ों ग्रंथों का सृजन किया है।

प्रस्तुत पुस्तक का प्रथम संस्करण सन् 1982 में प्रकाशित हुआ था, तब से निरंतर इसकी मांग आ रही थी क्योंकि वे 3300 प्रतियाँ शीघ्र ही समाप्त हुई थीं। पुनः इसके द्वितीय और तृतीय संस्करण भी क्रमशः सन् 1992 एवं 1996 में प्रकाशित हो चुके हैं। बढ़ती हुई माँग को देखते हुए दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान, जम्बूद्वीप-हस्तिनापुर में स्थापित वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला के माध्यम से इसका चतुर्थ संस्करण आपके हाथों में आ रहा है।

बालक ही नहीं वरन् प्रौढ़ पाठक भी इन सत्य कथानकों को पढ़कर अपने जीवन को आदर्श बनावें, यही मंगलकामना है।

पुस्तक की रचयित्री, परमपूज्य गणिनीप्रमुख आर्यिकाशिरोमणि श्री ज्ञानमती माताजी का संक्षिप्त-परिचय

—प्रज्ञाश्रमणी आर्यिका चन्दनामती

जन्मस्थान—टिकैतनगर (बाराबंकी) उ.प्र.

जन्मतिथि—आसोज सुदी 15 (शरदपूर्णिमा) वि. सं. 1991 (22 अक्टूबर, सन् 1934)

गृहस्थ का नाम—कु. मैना

माता-पिता—श्रीमती मोहिनी देवी एवं श्री छोटेलाल जैन

आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत—ई. सन् 1952 में बाराबंकी में शरदपूर्णिमा के दिन आचार्यरत्न श्री देशभूषण जी महाराज से।

क्षुल्लिका दीक्षा—चैत्र कृ. 1, ई. सन् 1953 को महावीरजी अतिशय क्षेत्र (राज.) में।

आर्यिका दीक्षा—वैशाख कृ. 2, ई. सन् 1956 को माधोराजपुरा (राज.) में चारित्रचक्रवर्ती 108 आचार्य श्री शांतिसागर जी की परम्परा के प्रथम पट्टाधीश आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज के करकमलों से।

साहित्यिक कृतित्व—अष्टसहस्री, समयसार, नियमसार, मूलाचार, कातंत्र-व्याकरण, षट्खण्डागम आदि ग्रंथों के अनुवाद/टीकाएं एवं 250 विशिष्ट ग्रंथों की लेखिका। सन् 1995 में अवध वि.वि. (फैजाबाद) द्वारा ''डी.लिट्.'' की मानद उपाधि से विभूषित।

तीर्थ निर्माण प्रेरणा—हस्तिनापुर में जंबूद्वीप तीर्थ का निर्माण, शाश्वत तीर्थ अयोध्या का विकास एवं जीर्णोद्धार, प्रयाग-इलाहाबाद (उ.प्र.) में तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ का निर्माण, तीर्थंकर जन्मभूमियों का विकास यथा—भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा-बिहार) में 'नंद्यावर्त महल' नामक तीर्थ निर्माण, भगवान पुष्पदंतनाथ की जन्मभूमि काकन्दी तीर्थ (निकट गोरखपुर-उ.प्र.) का विकास, भगवान पार्श्वनाथ केवलज्ञानभूमि अहिच्छत्र तीर्थ पर तीस चौबीसी मंदिर, हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप स्थल पर भगवान शांतिनाथ-कुंथुनाथ-अरहनाथ के 31 फुट उत्तुंग खड्गासन प्रतिमा निर्माण की प्रेरणा, मांगीतुंगी में निर्माणाधीन 108 फुट उत्तुंग भगवान ऋषभदेव की विशाल प्रतिमा इत्यादि।

महोत्सव प्रेरणा—पंचवर्षीय जम्बूद्वीप महामहोत्सव, भगवान ऋषभदेव अंतर्राष्ट्रीय निर्वाण महामहोत्सव, अयोध्या में भगवान ऋषभदेव महाकुंभ मस्तकाभिषेक, कुण्डलपुर महोत्सव, भगवान पार्श्वनाथ जन्मकल्याणक तृतीय सहस्राब्दि महोत्सव, दिल्ली में कल्पद्रुम महामण्डल विधान का ऐतिहासिक आयोजन इत्यादि। **विशेषरूप से 21 दिसम्बर 2008 को जम्बूद्वीप स्थल पर विश्वशांति अहिंसा सम्मेलन का आयोजन हुआ, जिसका उद्घाटन भारत की राष्ट्रपति श्रीमती प्रतिभा देवीसिंह पाटील द्वारा किया गया।**

शैक्षणिक प्रेरणा—'जैन गणित और त्रिलोक विज्ञान' पर अंतर्राष्ट्रीय संगोष्ठी, राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन, इतिहासकार सम्मेलन, न्यायाधीश सम्मेलन एवं अन्य अनेक राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय स्तर के सेमिनार आदि।

रथ प्रवर्तन प्रेरणा—जम्बूद्वीप ज्ञानज्योति (1982 से 1985), समवसरण श्रीविहार (1998 से 2002), महावीर ज्योति (2003-2004) का भारत भ्रमण।

इस प्रकार नित्य नूतन भावनाओं की जननी पूज्य माताजी चिरकाल तक इस वसुधा को सुशोभित करती रहें, यही मंगल कामना है।

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान-संक्षिप्त परिचय

—पीठाधीश क्षुल्लक मोतीसागर

दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान की स्थापना पूज्य गणिनीप्रमुख श्री ज्ञानमती माताजी की प्रेरणा से सन् 1972 में राजधानी दिल्ली में हुई थी। संस्थान का मुख्य कार्यालय सन् 1974 में हस्तिनापुर में प्रारंभ हुआ। इस संस्थान के अन्तर्गत अनेक गतिविधियाँ हस्तिनापुर में तथा अन्यत्र चल रही हैं—

1. सन् 1972 से वीर ज्ञानोदय ग्रंथमाला के अन्तर्गत लाखों ग्रंथ प्रकाशित हो रहे हैं।
2. सन् 1974 से इस संस्थान के मुखपत्र के रूप में 'सम्यग्ज्ञान' हिन्दी मासिक पत्रिका का निरंतर प्रकाशन हो रहा है।
3. सन् 1974 से 1985 तक हस्तिनापुर में जम्बूद्वीप रचना का निर्माण कार्य हुआ।
4. सन् 1974 से अब तक जम्बूद्वीप रचना के अतिरिक्त अनेक जिनमंदिरों का निर्माण हुआ है—कमल मंदिर, तीन मूर्ति मंदिर, ध्यान मंदिर, शांतिनाथ मंदिर, वासुपूज्य मंदिर, ॐ मंदिर, सहस्रकूट मंदिर, विद्यमान बीस तीर्थंकर मंदिर, आदिनाथ मंदिर, अष्टापद मंदिर, ऋषभदेव कीर्तिस्तंभ, स्वर्णिम तेरहद्वीप रचना एवं नवग्रहशांति जिनमंदिर।
5. जम्बूद्वीप पुस्तकालय जिसमें लगभग 15000 ग्रंथ संग्रहीत हैं।
6. णमोकार महामंत्र बैंक जिसमें भक्तों द्वारा लिखकर भेजे गये करोड़ों णमोकार मंत्र जमा किये जाते हैं।
7. समय-समय पर शिक्षण-प्रशिक्षण शिविरों तथा संगोष्ठियों के आयोजन कियेजाते हैं।
8. यात्रियों के शुद्ध भोजन के लिए राजा श्रेयांस भोजनालय का संचालन।
9. यात्रियों के ठहरने के लिए आधुनिक सुविधायुक्त डीलक्स फ्लैट्स वाली कई धर्मशालाओं तथा कोठियों एवं बंगलों का निर्माण किया गया है।
10. जम्बूद्वीप परिक्रमा के लिए नौका विहार, ऐरावत हाथी तथा मनोरंजन हेतु मिनी ट्रेन, झूले आदि हैं।
11. ज्ञानमती कला मंदिरम् में हस्तिनापुर के प्राचीन इतिहास से संबंधित झाँकियाँ हैं।
12. तीर्थंकर जन्मभूमियों की वंदना एवं धार्मिक फिल्मों का प्रदर्शन करने वाले थियेटर से समन्वित हीरक जयंती एक्सप्रेस।

दिल्ली, मेरठ, मुजफ्फरनगर, हरिद्वार, झाँसी, तिजारा आदि से जम्बूद्वीप स्थल तकआने के लिए दिन भर बसें मिलती रहती हैं।

दि. जैन त्रिलोक शोध संस्थान के अन्तर्गत भगवान महावीर जन्मभूमि कुण्डलपुर (नालंदा) बिहार में भव्य नंद्यावर्त महल तीर्थ तथा प्रयाग-इलाहाबाद (उ.प्र.) में निर्मित तीर्थंकर ऋषभदेव तपस्थली तीर्थ का भी संचालन होता है।

जम्बूद्वीप एवं अन्य रचनाओं के दर्शन हेतु हस्तिनापुर पधारकर आध्यात्मिक एवं शारीरिक सुख की प्राप्ति करें।

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला के शिरोमणि संरक्षक

1. श्रीमती निर्मला जैन ध.प. स्व. श्री प्रेमचन्द्र जैन, तत्पुत्र प्रदीप कुमार जैन, खी बावली, दिल्ली-6।
2. श्रीमती सुमन जैन ध.प. श्री दिग्विजय सिंह जैन, इंदौर।
3. श्री महावीर प्रसाद जैन संघपति, जी-19, साऊथ एक्सटेन्शन, नई दिल्ली।
4. श्री महेन्द्र पाल हरेन्द्र कुमार जैन, सूरजमल विहार, दिल्ली।
5. श्रीमती मोहनी जैन ध.प. श्री सुनील जैन, प्रीत विहार, दिल्ली।
6. श्री देवेन्द्र कुमार जैन (धारूहेड़ा वाले) गुड़गाँव (हरि.)।
7. श्रीमती शारदा रानी जैन ध.प. स्व. रिखबचंद जैन, बाहुबली एन्क्लेव, दिल्ली-92।
8. डॉ. देवेन्द्र कुमार जैन, भोपाल (म.प्र.)
9. श्रीमती संगीता जैन ध.प. श्री संजीव कुमार जैन, शेरकोट (बिजनौर) उ.प्र.
10. श्री अनिल कुमार जैन, दरियागंज, दिल्ली
11. श्री बी.डी. मदनाइक, मुम्बई
12. श्री धनकुमार जैन, बाहुबली एन्क्लेव, दिल्ली-92।
13. श्री जितेन्द्र कुमार जैन एवं श्रीमती सुनीता जैन कोटड़िया, फ्लोरिडा, यू.एस.ए.
14. श्रीमती विमला देवी जैन ध.प. श्री ओमप्रकाश जैन, स्वालिक नगर, हरिद्वार (उत्तराखंड)।
15. श्री अमित जैन एवं संभव जैन सुपुत्र श्रीमती अनीता जैन ध.प. श्री मूलचंद जैन पाटनी, दिसपुर (कामरूप) आसाम।
16. श्रीमती अजित कुमारी जैन ध.प. श्री महेन्द्र कुमार जैन, ओबेदुल्लागंज (रायसेन) म.प्र.।

वीर ज्ञानोदय ग्रन्थमाला के परम संरक्षक

1. श्री माँगीलाल बाबूलाल पहाड़े, हैदराबाद (आन्ध्र प्रदेश)।
2. डॉ. प्रकाशचन्द्र जैन, 792 विवेकानंदपुरी, सिविल लाइन, सीतापुर (उ.प्र.)।
3. श्री सुमत प्रकाश जैन, गज्जू कटरा, शाहदरा, दिल्ली।
4. श्री सुनील कुमार जैन, द्वारा-सुनील टैक्सटाईल्स, सरधना (मेरठ) उ.प्र.।
5. श्री प्रकाश चंद अमोलक चंद जैन सर्राफ, सनावद (म.प्र.)।
6. श्री प्रद्युम्न कुमार जवेरी, रोकड़ियालेन, बोरीवली (वेस्ट) मुंबई।
7. श्रीमती उर्मिला देवी ध.प. श्री कान्ती प्रसाद जैन, ऋषभ विहार, दिल्ली।
8. श्रीमती उषा जैन ध.प. श्री विमल प्रसाद जैन, ऋषभ विहार, दिल्ली।
9. श्री आनन्द प्रकाश जैन (सौरम वाले) , गांधीनगर, दिल्ली।
10. श्रीमती सरिता जैन ध.प. श्री राजकुमार जैन, किदवई नगर, कानपुर।
11. स्व. श्रीमती कैलाशवती ध.प. श्री कैलाश चन्द्र जैन , तोपखाना बाजार, मेरठ।
12. श्री भानेन्द्र कुमार जैन, द्वारा-श्री विद्या जैन, भगत सिंह मार्ग, जयपुर।
13. श्री प्रदीप कुमार शान्तिलाल बिलाला, अनूपनगर, इंदौर, (म.प्र.)।
14. श्री सुरेशचंद पवन कुमार जैन, बाराबंकी (उ.प्र.)।
15. श्री नथमल पारसमल जैन, कलकत्ता-7।
16. श्रीमती स्व. शांताबाई ध.प. श्री कमलचंद जैन, सनावद (म.प्र.)।
17. श्री रूपचंद जैन कटारिया, दिल्ली
18. श्री आशु जैन, कालका जी, नई दिल्ली

विषयानुक्रमणिका

विषय	पृष्ठ
1. णमोकार मन्त्र का महत्त्व।	1
2. धर्म का प्रत्यक्ष फल।	3
3. गुरू भक्ति।	5
4. महामन्त्र के अपमान का दुष्परिणाम।	7
5. अविनय का परिणाम।	9
6. रात्रि भोजन क्यों नहीं?	11
7. बलि से हानि।	13
8. राम और सुग्रीव।	15
9. क्या वीर भगवान हम जैसे साधारण मानव थे?	17
10. सच्चे बान्धव।	19
11. पाप का फल सर्वथा बुरा है।	21
12. भोग से त्याग महान।	24
13. व्यसनी की संगति से हानि।	27
14. रत्न सम्पदाएँ भी घातक हैं।	29
15. सच्चा दान।	32
16. तीर्थ वन्दना।	34
17. आज्ञा पालन कहाँ उचित?	37
18. दिगम्बर मुनि किसी का दोष प्रकट नहीं करते।	39

णमोकार मन्त्र का महत्त्व

णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आइरियाणं।
णमो उवज्झायाणं, णमो लोए सव्वसाहूणं।।

नरेश—मित्र! मैंने सुना है कि णमोकार मन्त्र के प्रभाव से कुत्ता देव हो गया, सो कैसे?

सुरेश—हाँ बन्धु! क्या तुम्हारी माँ ने कभी तुम्हें णमोकार मन्त्र का महत्त्व नहीं सुनाया? सुनो, मैं सुनाता हूँ।

नरेश—मित्र! मैं स्कूल से पढ़कर घर जाकर भोजन करके जल्दी ही भाग आता हूँ और खेलकूद में लग जाता हूँ। पुनः माँ के मन्दिर जाकर आने से पहले ही मैं सो जाता हूँ और प्रातः माँ खूब हल्ला मचाकर जगाकर जब मन्दिर चली जाती है, तब मैं सोकर उठता हूँ। अतः मेरी माँ मुझे कब ऐसी-ऐसी बातें बतायें? अब तो आप ही णमोकार मन्त्र के रहस्य को समझा दीजिये।

सुरेश—सुनो मित्र! किसी समय राजपुरी के उद्यान में बहुत से ब्राह्मण लोग यज्ञ कर रहे थे, एक कुत्ता आया और अत्यधिक भूखा होने से उसने यज्ञ की सामग्री खानी चाही तथा झट से किसी थाल में मुँह लगा ही दिया। बस! क्या था? एक ब्राह्मण ने गुस्से में आकर उस कुत्ते को डंडे से खूब मारा जिससे वह मरणासन्न हो गया। उधर से जीवंधरकुमार अपने मित्रों के साथ निकले। कुत्ते की दशा देखकर वे परमदयालु स्वामी वहीं बैठ गये। वे समझ गये कि अब यह कुत्ता बच नहीं सकता है। तब उन्होंने उसके कान में णमोकार मन्त्र सुनाना प्रारम्भ किया। कुत्ते को इस मन्त्र से बहुत ही शांति मिली। मित्र! मेरी माँ कहा करती है कि यह मन्त्र संकट के समय अमोघ उपाय है। वेदना में महाऔषधि है। वह कुत्ता भी बड़े प्रेम से कान उठाकर मन्त्र को सुनता रहा।

(2)

जीवंधर स्वामी बार-बार उसके ऊपर हाथ फेरकर उसे सान्त्वना दे रहे थे।

नरेश—मित्र! फिर वह कुत्ता देव कब हो गया?

सुरेश—भैया! सुनो, इस मन्त्र के प्रभाव से वह कुत्ता मरकर सुदर्शन नाम का यक्षेन्द्र देव हो गया। अन्तर्मुहूर्त (48 मिनट) के भीतर ही भीतर उसका वैक्रियक शरीर नवयुवक के समान पूर्ण हो गया और उसे अवधिज्ञान प्रकट हो गया। तब उसने सब बातें जानकर देवगति को प्राप्त कराने वाले परमोपकारी गुरू जीवंधर कुमार के पास शीघ्र ही आकर नमस्कार किया। उस समय तक जीवंधर कुमार उस कुत्ते को मन्त्र सुना ही रहे थे। उस देव ने आकर स्वामी की खूब स्तुति की और "समय पर मुझ दास को स्मरण करना" ऐसा कहकर चला गया। बंधुवर! जीवंधर के जीवन में बहुत से संकट के समय आये और इस देव ने आ-आकर रक्षा की, सेवा भक्ति की, अनेकों बार इस देव ने इनको सहयोग दिया तथा जीवन भर इनका भक्त कृतज्ञ बना रहा।

नरेश—मुझे बड़ा आश्चर्य हो रहा है कि इस मन्त्र में इतनी शक्ति है। मैंने तो रात्रि पाठशाला में इस मन्त्र को पढ़ा है इसीलिए याद है किन्तु मेरे छोटे भाईयों को तो यह मन्त्र याद भी नहीं है।

सुरेश—भाई नरेश! मनुष्य पर्याय पाकर और जैनकुल में जन्म लेकर तो इस मन्त्र को प्रतिदिन क्या प्रतिक्षण जपते ही रहना चाहिये। देखो! इस कथा से हमें कई शिक्षाएँ मिलती हैं।

1. कुत्ते आदि दीन पशुओं को मारना नहीं चाहिये।
2. किसी को संकट के समय या मरणासन्नावस्था में णमोकार मन्त्र अवश्य सुनाना चाहिये।
3. अपने प्रति उपकार करने वाले का कृतज्ञ बनकर बार-बार प्रत्युपकार करते रहना चाहिये।
4. महामन्त्र का खूब जाप करना चाहिये।
5. माँ से, गुरूजनों से ऐसी कथायें सुनना चाहिए और मन्दिर में बैठकर स्वाध्याय करना चाहिये।
6. जीवंधर चरित्र अवश्य पढ़ना चाहिये।

नरेश—अच्छा मित्र! आज हमें बहुत अच्छी बातें मिली हैं। मैं आज घर में सबको इस कथा को सुनाऊँगा।

सुरेश—अच्छा! जयजिनेन्द्र। अब चलें, कल फिर मिलेंगे।

धर्म का प्रत्यक्ष फल

जयकुमार—भाई विजय! आज आपने खेल में भाग क्यों नहीं लिया?

विजयकुमार—मित्र! आज मेरी माँ शांतिनाथ चरित्र पढ़ते हुए बहुत ही सुन्दर कथा सुनाने लगीं और मैं खेलकूद भूल गया।

जयकुमार—भाई! वह कथा मुझे भी सुना दो।

विजयकुमार—हाँ सुनो, मित्र! किसी समय पोदनपुर के राजा श्रीविजय राजसिंहासन पर विराजमान थे। अकस्मात् एक पुरुष आकर बोला कि हे राजन्! आज से सातवें दिन पोदनपुर के राजा के मस्तक पर महावज्र गिरेगा, अतः शीघ्र ही इसके प्रतिकार का विचार कीजिये। उसी समय कुपित होकर युवराज बोला कि तू सर्वज्ञ है तो बता उस दिन तेरे मस्तक पर क्या पड़ेगा? उस व्यक्ति ने कहा कि मेरे मस्तक पर अभिषेक के साथ रत्नवृष्टि पड़ेगी। उसके अभिमानपूर्ण वचन से राजा को आश्चर्य हुआ। उसे आसन पर बिठाकर उसका परिचय आदि पूछा। तब उसने बताया कि मैंने दिगम्बर मुनि के पास निमित्तज्ञान सीखा है। आज कुछ निमित्तों का फल जानकर मैंने सही बात बताई है। तब सभी ने उसको विदा करके चिंतित होकर राजा की सुरक्षा का विचार प्रारम्भ किया। किसी ने कहा कि लोहे की सन्दूक में बन्द कर समुद्र में रख दो। किसी ने कहा कि विजयार्ध की गुफा में छिपा दो, आदि। इस पर मतिसागर नाम के बुद्धिमान मन्त्री ने कहा कि निमित्तज्ञानी ने पोदनपुर नरेश के मस्तक पर वज्रपात की बात कही है तो मेरी समझ में ऐसा उपाय करो कि जिससे हर तरह से लाभ हो। देखो! महाराज श्रीविजय सात दिन के लिये राज्य का त्याग कर मन्दिर में धर्म ध्यान करें। यदि जीवित रहे तो पुनः राज्य करेंगे, यदि मरण होगा तो समाधि से मरकर स्वर्ग प्राप्त करेंगे। यह बात राजा को और सभी मन्त्रीवर्गों को जँच गई।

अनन्तर मन्त्रियों ने एक यक्ष की प्रतिमा को राजसिंहासन पर स्थापित कर "आप पोदनपुर के राजा हैं" ऐसा कहकर उसकी पूजा की। इधर राजा ने सर्व भोजनादि का त्याग कर दान-पूजन आदि कार्य प्रारम्भ कर दिये और जिन चैत्यालय में शांति कार्य करते हुए बैठ गये। सातवें दिन भयंकर शब्द करते हुए महावज्र उस यक्ष की मूर्ति पर गिरा और राजा मन्दिर में पूजा-पाठ

करते हुए उस उपद्रव से बच गये। इस घटना से नगर निवासीजनों में बहुत ही हर्ष व्याप्त हो गया। सर्वत्र नगाड़े आदि बाजे बजने लगे। राजा श्रीविजय की अकाल मृत्यु का योग टल गया ऐसा समझकर सभी मन्त्रियों ने अरहंत भगवान की भक्ति के साथ शांतिपूजा की, महाअभिषेक किया और राजा को सिंहासन पर बिठाकर सुवर्ण घण्टों से उनका राज्याभिषेक किया।

पुनः राजा ने उसी समय बड़े हर्ष के साथ उस निमित्तज्ञानी को बुलाकर उसका सत्कार किया और पद्मिनीखेट के साथ-साथ सौ गाँव उसे दे दिये। इसके बाद बहुत काल तक उन्होंने सुख से राज्य किया है। इस श्रीविजय से नवमें भव में ये ही महापुण्यशाली पुरुष भगवान शांतिनाथ के समवसरण में चक्रायुध नाम के गणधर हुए हैं।

जयकुमार—देखो विजय! यदि ये श्रीविजय महाराज राज्य का त्याग कर धर्म का अनुष्ठान नहीं करते तो अवश्य ही मृत्यु को प्राप्त हो जाते और राज्य में मरकर दुर्गति में ही चले जाते।

विजयकुमार—सच है मित्र जयकुमार! धर्म में अचिंत्य शक्ति है। हम लोग बारह भावना में पढ़ते भी हैं कि—

जाँचे सुरतरु देय सुख चिंतत चिंता रैन।
बिन जाँचे बिन चिंतये धर्म सकल सुख देन।।

इसलिये हमेशा ही धर्म की शरण में रहना चाहिये।

जयकुमार—हाँ मित्र! यह कथा बहुत ही सुन्दर है अब मैं भी शांतिनाथ चरित्र अवश्य ही पढ़ूँगा। अच्छा अब चलें, कल फिर मिलेंगे।

सरस्वती मंत्र

ॐ ह्रीं श्रीं वद वद वाग्वादिनि भगवति
सरस्वति ह्रीं नमः।

गुरू-भक्ति

महेन्द्र कुमार—भाई नरेन्द्र! आज मैं आचार्य संघ में मुनियों के दर्शन करके एक मुनिराज के पास बैठ गया। वे पाण्डव पुराण का स्वाध्याय कर रहे थे, उन्होंने मुझे एक सुन्दर घटना सुनाई।

नरेन्द्र कुमार—भाई महेन्द्र! यह घटना मुझे भी सुनाओ और आप कल से मुझे भी अपने साथ दर्शन करने ले चला करो।

महेन्द्र कुमार—मित्र सुनो! किसी समय वन में अर्जुन ने एक कुत्ते को देखा। उसका मुख बाणों के प्रहार से भरा हुआ था। उसे देख अर्जुन ने सोचा—यह शब्दभेदी धनुर्विद्या गुरू ने मुझे ही दी है, इसका जानकार यहाँ दूसरा कौन है? खोजते-खोजते हुए एक भील मिला। उससे वार्तालाप होने से उसने कहा—"मेरे गुरू द्रोणाचार्य हैं", मैंने उन्हीं से यह विद्या सीखी है। यह सुनकर अर्जुन के आश्चर्य का पार नहीं रहा। तब भील ने वन में बनाये हुए मिट्टी के स्तूप के पास ले जाकर अर्जुन को दिखाया और कहा—"मेरे गुरू ये ही हैं। मैंने इन्हीं में द्रोणाचार्य की कल्पना कर रखी है। मैं इसी स्तूप को गुरू मानकर उपासना करके शब्दभेदी धनुर्विद्या में निपुण हुआ हूँ।"

अर्जुन ने हस्तिनापुर आकर गुरू द्रोणाचार्य को सारी घटना सुना दी और कहा कि वह पापी भील निरपराध पशुओं को मारकर पाप कर्म का संचय कर रहा है। आपको उसे रोकना चाहिये। गुरू द्रोणाचार्य अर्जुन के साथ वहाँ गये। जब भील को पता चला कि सचमुच में ये ही द्रोणाचार्य हैं तो उसकी भक्ति का पार नहीं रहा। गद्‌गद होकर उसने साष्टांग नमस्कार किया, बहुत ही भक्ति प्रदर्शित की। द्रोणाचार्य ने कहा कि—"मैं गुरू-दक्षिणा में जो कुछ तुमसे माँगूँ तुम दोगे?" उत्तर में उसने सहर्ष स्वीकार कर लिया। तब गुरू ने कहा—"अपने दाहिने हाथ का अँगूठा मुझे दे दो।" उस भील ने उसी समय अपना दाहिना अँगूठा काटकर दे दिया। अब वह बाण चलाने में असमर्थ हो गया और जीव हिंसा से बच गया।

देखो मित्र! गुरू-भक्ति से भील ने आज भी अपना नाम अमर कर रखा है।

नरेन्द्र कुमार—मित्र! जो आज गुरुओं से द्रोह करते हैं, निन्दा करते हैं, उपेक्षा करते हैं, उन्हें पाप अवश्य ही लगता होगा।

महेन्द्र कुमार—हाँ मित्र! जो गुरू-भक्ति करते हैं वे अनेकों लौकिक सुखों को प्राप्त करके एक दिन मोक्ष सुख को भी प्राप्त कर लेते हैं किन्तु जो गुरू-निन्दा करते हैं, वे गुरूद्रोही, कृतघ्नी, आत्मद्रोही, महापापी हैं, बहुत काल तक संसार में परिभ्रमण करते रहते हैं। इसीलिए गुरू विरोध कभी नहीं करना चाहिये और सदैव गुरू-भक्ति करते रहना चाहिये।

"गुरू-भक्तिः सती मुक्त्यै क्षुद्रं किंवा न साधयेत्"

जब गुरू-भक्ति मुक्ति को भी प्राप्त करा देती है, तब छोटे-छोटे कार्यों की सिद्धि करा दे, इसमें आश्चर्य ही क्या है?

नरेन्द्र कुमार—अच्छा मित्र! मैं भी आज नियम लेता हूँ कि प्रतिदिन गुरू-भक्ति करूँगा और कभी गुरुओं की निन्दा नहीं करूँगा, न सुनूँगा। अब चलें, फिर मिलेंगे। जय जिनेन्द्र।

उषा वंदना

उठो भव्य! खिल रही है उषा, तीर्थ वंदना स्तवन करो।
आर्तरौद्र दुर्ध्यान छोड़कर, श्री जिनवर का ध्यान करो।।1।।
अष्टापद से ऋषभदेव जिन, वासुपूज्य चम्पापुर से।
ऊर्जयन्त से श्री नेमीश्वर, मुक्ति गये वंदों रुचि से।।2।।
पावापुरी सरोवर से इस, उषा काल में श्री महावीर।
विधुत क्लेश निर्वाण गये हैं, नमो उन्हें झट हो भवतीर।।3।।
बीस जिनेश्वर मोक्ष गये हैं, श्री सम्मेद शिखर गिरि से।
और असंख्य साधुगण भी, शिव गये उन्हें वंदों रुचि से।।4।।
जिनवर गणधर मुनिगण की, निर्वाण भूमियाँ सदा नमो।
पंचकल्याणक भूमि तथा, अतिशययुत क्षेत्र सभी प्रणमो।।5।।
शालिपिष्ट भी शर्करयुत, माधुर्य स्वादकारी जैसे।
पुण्य पुरुष के पद रज से ही, धरा पवित्र हुई वैसे।।6।।
त्रिभुवन के मस्तक पर सिद्ध-शिला पर सिद्ध अनंतानंत।
नमो नमो त्रिभुवन के सभी, तीर्थ को जिससे हो भव अंत।।7।।
तीर्थक्षेत्र वंदन से नंतानंत, जन्म कृत पाप हरो।
सम्यक् "ज्ञानमती" श्रद्धा से, शीघ्र सिद्ध सुख प्राप्त करो।।8।।

महामन्त्र के अपमान का दुष्परिणाम

विनय कुमार–गुरूजी! णमोकार मन्त्र पर पैर रखने से क्या होता है? आज मैंने णमोकार मन्त्र लिखे कागज पर पैर रख दिया तो मेरी माँ ने बहुत ही गुस्सा किया है।

अध्यापक–यह बहुत बड़ा दोष है। देखो विनय! तुम ध्यान से सुनो, मैं एक हृदयद्रावक इतिहास सुनाता हूँ–

सुभौम चक्रवर्ती छह खण्ड पृथ्वी को जीतकर इस वसुधा पर एकछत्र शासन कर रहे थे। एक दिन भोजन करते समय इनके जयसेन रसोइये ने गरम-गरम खीर परोस दी। उसके खाने से चक्रवर्ती का मुँह जल गया। इससे उन्हें रसोइये पर बड़ा ही गुस्सा आया। उन्होंने खीर रखे गरम बर्तन को ही उसके सिर पर दे मारा। उससे उस रसोइये का सिर जल गया। इस घोर वेदना से मरकर वह लवण समुद्र में व्यन्तर देव हो गया। उसने अपने कुअवधिज्ञान से पूर्वभव की बात जान ली और चक्रवर्ती से बदला लेने के लिए बेचैन हो उठा। तब वह एक तापसी बनकर अच्छे-अच्छे सुन्दर फलों को लेकर चक्रवर्ती के पास पहुँचा। चक्रवर्ती उन फलों को खाकर बहुत ही प्रसन्न हुए। जब चक्रवर्ती उन मीठे-मीठे फलों के लोभ में आ गये तब उसने कहा–''राजन्! समुद्र के बीच में मेरा घर है। आप वहाँ चलने की कृपा करें।''

चक्रवर्ती भी लोभ में आकर उस कपटी के साथ चल पड़े। जब व्यन्तर देव इन्हें लिये बीच समुद्र में पहुँचा तब उसने सारा रहस्य खोल दिया और अपना व्यन्तर रूप प्रगट कर मारने को तैयार हुआ। उस समय राजा घबराकर मन में णमोकार मन्त्र को जपने लगा।

विनयकुमार–गुरूजी! तब तो वह मरकर स्वर्ग चला गया होगा।

अध्यापक–नहीं विजय! सुनो तो सही, आगे क्या होता है। उस मन्त्र के प्रभाव से व्यन्तर चक्रवर्ती सुभौम को मार नहीं सका। तब उसने कूटनीति अपनाई। उसने कहा–''राजन्! यदि आप णमोकार मन्त्र को पानी पर लिखकर उसे अपने पैरों से मिटा देंगे तो मैं तुम्हें जीवित छोड़ दूँगा, नहीं तो मैं तुम्हें अवश्य ही मार डालूँगा।'' बस, चक्रवर्ती ने प्राणों के लोभ में आकर इस महामन्त्र को लिखकर पैर लगा दिया। उसी समय व्यन्तर ने इसे समुद्र में डुबोकर मार दिया और वह मरकर सातवें नरक में चला गया।

विनय कुमार–क्या गुरूजी! यदि राजा मन्त्र को लिखकर न मिटाता तो व्यन्तर देव उसे मार नहीं सकता था?

अध्यापक–हाँ विनय, इस मन्त्र के प्रभाव से वह व्यन्तर उस समय चक्रवर्ती को मारने में असमर्थ रहा था। हो सकता है कि कोई जिनशासन भक्त अन्य देव उसे इस अन्याय से रोककर चक्रवर्ती की रक्षा कर लेता किन्तु जब इस राजा ने सभी तरफ से रक्षक ऐसे मन्त्र को ही छोड़ दिया, तब उसकी रक्षा कैसे हो सकती थी? इसीलिए तो हम सब प्रातः भगवान की स्तुति में यह पाठ पढ़ते हैं कि–

''जिनधर्मविनिर्मुक्तो मा भवं चक्रवर्त्यपि।
स्याच्चेटोऽपि दरिद्रोपि जिनधर्मानुवासितः।।''

भक्त भगवान से कहता है कि हे भगवान! जैनधर्म से रहित होकर मैं चक्रवर्ती भी नहीं होना चाहता हूँ किन्तु जैनधर्म को धारण करते हुए भले ही मैं किसी का नौकर होकर रहूँ या दरिद्र ही बना रहूँ, मुझे कोई चिन्ता नहीं है क्योंकि यह जैनधर्म प्राणियों को पूर्ण सुखी भगवान तक बना देता है तब अन्य संसार के सुख इससे न मिलें, ऐसी क्या बात है!

इसीलिए प्रिय बालकों! तुम लोग कभी णमोकार मन्त्र को और जैनधर्म को नहीं छोड़ना। चाहे जितने भी संकट क्यों न आ जायें। यह धर्म ही तुम्हारी रक्षा करके तुम्हें सर्व-सुखी बनायेगा तथा णमोकार मन्त्र आदि लिखे हुए कागज पर भी पैर नहीं रखना, इससे मन्त्र का अविनय होकर पाप लगता है।

विश्वशांति मंत्र

ॐ ह्रीं विश्वशांतिकराय श्री शांतिनाथाय नमः।

अविनय का परिणाम

शिष्य—गुरूजी! कल सड़क पर एक पागल आदमी चिल्ला रहा था। तमाम बच्चे इकट्ठे होकर उसे परेशान कर रहे थे और ताली बजा-बजाकर हँस रहे थे। उस समय मैं भी उसमें शामिल हो गया। उस समय मेरी बड़ी बहन ने ऐसा करने से मना कर दिया और कहा कि ऐसा करने से बहुत ही पाप लगता है, सो क्यों?

अध्यापक—हाँ सच है बच्चों! किसी को भी हँसने से पाप लगता है? फिर जो पागल या दुःखी हैं उन्हें सताने से या साधु वर्गों की हँसी करने से तो बहुत ही पाप लगता है। सुनो, इस विषय में मैं तुम्हें एक आश्चर्यजनक घटना सुनाता हूँ।

शिष्य—हाँ गुरूजी! अवश्य सुनाइये।

अध्यापक—किसी समय चतुर्विध संघ सम्मेदशिखर की वन्दना के लिए जा रहा था। उस समय एक 'अंतिक' नामक ग्राम से संघ निकला। दिगम्बर साधुओं को देखकर गाँव के लोग हँसने लगे। एक-एक को हँसता देखकर सबके सब हँसने लगे और कुवचन कहने लगे। उस ग्राम में एक कुम्भकार ने सबको हँसने से मना किया और संघ की स्तुति की। संघ के साधुओं को कुछ नहीं, उन्हें तो निन्दा-स्तुति दोनों ही समान हैं। कुछ दिन बाद उस गाँव में किसी ने चोरी की। तब राजा ने कुपित होकर घेरा डालकर सारा गाँव का गाँव जला दिया। जिस दिन वह गाँव जलाया गया, उस दिन वह कुम्भकार कहीं बाहर गया हुआ था, सो वह बच गया।

शिष्य—गुरूजी! फिर क्या हुआ?

अध्यापक—पुनः वे सब मरकर दो इन्द्रिय जीव कौड़ी हो गये।

शिष्य—हाय! हाय! सबके सब हँसने के पाप से कौड़ी हो गये।

अध्यापक—हाँ बच्चों! देखो! गुरुओं की हँसी करने का दुष्परिणाम कितना बुरा निकला। पुनः वह कुम्भकार व्यापारी हुआ। उसने सब कौड़ियाँ खरीद लीं। अनन्तर ये सब कौड़ी मरकर गिंजाई हो गये और कुम्भकार का जीव राजा हो गया, सो उस राजा के हाथी के नीचे दबकर सब गिंजाई मर गये। इन जीवों ने एक साथ पाप बाँधा था सो एक साथ ही भोगते रहे। क्रमशः पाप कर्म हल्के हो जाने से ये सबके सब सगर चक्रवर्ती के साठ हजार पुत्र

हो गये और यह कुम्भकार सगर चक्रवर्ती का पोता 'भागीरथ' हो गया।

शिष्य—गुरूजी! क्या उस गाँव में साठ हजार लोग थे?

अध्यापक—हाँ बच्चों! वे साठ हजार थे और एक साथ ही पाप-पुण्य का बन्ध करते हुए सुख-दुःख का अनुभव करते रहे। इसीलिए बच्चों! किसी की हँसी और निन्दा करना बहुत बुरा है।

शिष्य—अच्छा, गुरूजी! अब हम किसी का उपहास और अविनय नहीं करेंगे।

मंगल स्तुति

जिनने तीन लोक त्रैकालिक सकल वस्तु को देख लिया।
लोकालोक प्रकाशी ज्ञानी युगपत् सबको जान लिया।।
रागद्वेष जर मरण भयावह नहिं जिनका संस्पर्श करें।
अक्षय सुख पथ के वे नेता जग में मंगल सदा करें।।1।।

चन्द्र किरण चन्दन गंगाजल से भी शीतल जो वाणी।
जन्म मरण भय रोग निवारण करने में है कुशलानी।।
सप्तभंगयुग स्याद्वादमय गंगा जगत् पवित्र करे।
सबकी पाप धूलि को धोकर जग में मंगल नित्य करे।।2।।

विषय वासना रहित निरम्बर सकल परिग्रह त्याग दिया।
सब जीवों को अभय दान दे निर्भयपद को प्राप्त किया।।
भव समुद्र में पतित जनों को सच्चे अवलम्बन दाता।
वे गुरुवर मम हृदय विराजो सब जन को मंगल दाता।।3।।

अनन्त भव के अगणित दुःख से जो जन का उद्धार करे।
इन्द्रिय सुख देकर शिव सुख में ले जाकर जो शीघ्र धरे।।
धर्म वही है तीन रत्नमय त्रिभुवन की सम्पति देवे।
उसके आश्रय से सब जन को भव-भव में मंगल होवे।।4।।

श्री गुरु का उपदेश ग्रहण कर नित्य हृदय में धारें हम।
क्रोध मान मायादिक तजकर विद्या का फल पावें हम।।
सबसे मैत्री दया क्षमा हो सबसे वत्सल भाव रहे।
'सम्यग्ज्ञानमती' प्रगटित हो सकल अमंगल दूर रहे।।5।।

रात्रि भोजन क्यों नहीं?

सुधीर—भाई सुनील! रात्रि भोजन के करने से क्या हानि होती है, हमें समझाओ?

सुनील—हाँ सुनो। किसी जमाने में हस्तिनापुर नगर में यशोभद्र महाराज के यहाँ रुद्रदत्त नाम के एक पुरोहित जी थे। एक बार उनकी पत्नी ने रात्रि में रसोई बनाई। चूल्हे के ऊपर बर्तन रखकर बघार के लिये वह हींग लेने बाहर चली गई। इधर एक मेंढक उछलकर उसमें गिर पड़ा। पुरोहित की स्त्री को कुछ मालूम नहीं हुआ। उसने आकर उसी में बैंगन छोंक दिये और उसी में बेचारा मेंढक मर गया। रात्रि में राज्य कार्य से समय पाकर पुरोहित जी आये। बहुत देर हो गयी थी, घर में सब सो गये थे, दीपक बत्ती कुछ नहीं था। भूखे पुरोहित जी ने अपने हाथ से खाना परोस लिया और खाने लगे। जब मुँह में मेंढक का ग्रास पहुँचा और वह दाँतों से नहीं चबा, तब पुरोहित जी ने उसे निकाल कर एक तरफ रख दिया और प्रातः उसे देखा तो मेंढक था। फिर भी पुरोहित जी को ग्लानि नहीं आई और न ही उसने रात्रि भोजन का त्याग ही किया। फलस्वरूप आयु के अन्त में मरकर उल्लू हो गया। पुनः मरकर नरक गया। पुनः कौवा हो गया, पुनः नरक गया। पुनः बिलाव हो गया, पुनः नरक गया। पुनः सावर हो गया, पुनः गिद्ध पक्षी हो गया। पुनः नरक गया। पुनः सूकर हो गया, पुनः नरक गया। पुनः अजगर हो गया, पुनः नरक गया। पुनः व्याघ्र हो गया, पुनः नरक गया। पुनः गोह हो गया और पुनः नरक चला गया। पुनरपि वहाँ से निकलकर जल में मगर हो गया और वहाँ भी हिंसा पाप करके नरक चला गया।

इस प्रकार दस बार तिर्यंच योनि के भयंकर दुःख भोगे और साथ ही साथ दस बार नरक के दुःखों को भी प्राप्त किया। देखो सुधीर! पाप का फल बट के बीच के समान सघन वृक्षरूप से फलित हो गया।

सुधीर—अरे, रे! उसने तो मेंढक खाया भी नहीं था फिर भी इतना भयंकर फल मिला।

सुनील—हाँ भाई! रात्रि भोजन के फल से ऐसे ही दुर्गति के दुःख उठाने पड़ते हैं। रात्रि में खाने वाले लोग प्रायः मरकर उल्लू, बिल्ली आदि पर्याय में

जन्म लेते हैं। पुनः वहाँ पर हिंसादि पाप करने से नरक में चले जाते हैं और देखो! इस जन्म में भी हानि ही होती है।

यदि रात्रि में भोजन के साथ चींटी खाने में आ जाये तो बुद्धि का विनाश हो जाता है। यदि कसारी भोजन में मिल जाये और खाने में आ जाये तो कंपन की बीमारी हो जाती है। यदि मकड़ी भोजन में मिल जाये तो कोढ़ रोग उत्पन्न हो जाता है। जूँ खाने में आ जाये तो जलोदर रोग हो जाता है। फाँस खाने में आने से गले में पीड़ा हो जाती है। खाने के साथ केश खा जाने से स्वर भंग हो जाता है। मक्खी का भक्षण हो जाने से वमन हो जाती है। खाने में बिच्छू के आ जाने से तालु में छिद्र हो जाता है। ऐसे ही अनेकों मच्छर, जन्तु आदि के भोजन में मिल जाने से अनेक रोग पैदा हो जाया करते हैं इसीलिए इन प्रत्यक्ष दोषों को जानकर तथा परभव में अनेक कुयोनियों के दुःखों से डरकर रात्रि भोजन का त्याग कर देना चाहिये।

सुधीर—मित्र! एक बात और है कि पुराने जमाने में लाईट नहीं थी, तब अनेक दोष आते थे। आज लाइट के युग में ऐसे जीवों का भोजन में सम्मिश्रित होना सम्भव नहीं है।

सुनील—नहीं, नहीं! आप समझे नहीं, भाई लाइट के सहारे तो और अधिक बारीक-बारीक जीव आ जाते हैं जो कि भोजन में एकमेक हो जाते हैं और दिखते ही नहीं हैं अतः रात्रि भोजन सर्वथा वर्जित ही है।

सुधीर—अच्छा, मैं आज से जीवन भर रात्रि भोजन का त्याग करता हूँ।

सुनील—तब चलो मित्र, गुरू के पास नियम करें क्योंकि गुरू से लिया हुआ नियम विशेष फलदायी एवं प्रमाणिक रहता है।

स्वास्थ्य मंत्र

ॐ ह्रीं अर्हं णमो सव्वोसहिपत्ताणं आरोग्य लाभं कुरु कुरु स्वाहा।

बलि से हानि

शिष्य—गुरू जी! आज मेरी माँ ने बताया कि शक्कर की बनी हुई मछली खाने से बड़ा पाप लगता है, सो कैसे? उसमें जीव तो है नहीं।

अध्यापक—हाँ! तुम्हारी माँ ने ठीक कहा है। देखो बालकों! मैं ऐसी ही एक घटना तुम्हें सुनाता हूँ। तुम लोग ध्यान देकर सुनो। यौधेय देश के राजपुर नगर में राजा मारिदत्त रहता था। इस देश में 'चंडमारी' नाम की कुलदेवी थी। यह राजा बड़ी भक्ति से जीवों की बलि चढ़ाकर चंडमारी देवी की पूजा करता रहता था।

एक समय उसी नगर में 'सुदत्त' नाम के दिगम्बर आचार्य मुनि, आर्यिका, श्रावक-श्राविका इस अपने चतुर्विध संघ सहित आकर वहाँ नगर के बाहर ठहर गये। संघ में एक छोटी उम्र के क्षुल्लक और क्षुल्लिका युगल (भाई-बहन) थे। इन्हें आचार्य ने आहार के लिए शहर में भेज दिया।

इधर मारिदत्त राजा सैकड़ों पशु-पक्षियों के युगलों को एकत्रित कर देवी के मन्दिर में बलि चढ़ाने के लिए गया। उस समय वहाँ पुजारी ने कहा कि राजन्! मनुष्य युगल और चाहिये। राजा ने शीघ्र ही नौकरों को मनुष्य युगललाने के लिये भेज दिया। ये नौकर जाकर इन दोनों क्षुल्लक-क्षुल्लिका को पकड़ लाये।

शिष्यवर्ग—हाय! हाय! ये क्षुल्लक-क्षुल्लिका घबरा गये होंगे।

अध्यापक—नहीं बच्चों! वे दोनों बहुत ही धीर-वीर थे। उन्होंने बड़े ही साहस से आकर राजा को आशीर्वाद देकर अपनी ओर आकृष्ट कर उपदेश देना शुरू कर दिया। मतलब उन्होंने अपने पूर्व भव बतलाते हुए राजा की आज्ञा से अपनी लघुवय में दीक्षा लेने का कारण बतलाया। क्षुल्लक कहते हैं कि—

हे राजन्! सुनो! उज्जयिनी नगर के राजा यशोधर की रानी का नाम अमृतादेवी था। एक दिन राजा ने अपनी रानी को कुबड़े महावत में आसक्त—व्यभिचारिणी देख विरक्त हो अपनी माता से दीक्षा की आज्ञा माँगी। माता ने जबरदस्ती समझा-बुझाकर यशोधर से देवी के सामने आटे के मुर्गे की बलि करा दी। इधर अमृता देवी ने अपनी सास और पति को विष देकर मार दिया। माता और पुत्र संकल्पी हिंसा के पाप से मरकर मयूर और कुत्ते हुए। दोनों ही बहुत दुःखों को भोगकर मरकर मगर और साँप हो गये। यहाँ भी बहुत ही दुःख भोगकर मत्स्य और मगर हो गये। यहाँ भी यशोधर के पुत्र यशोमति राजा ने मत्स्य को मारकर पितरों का श्राद्ध करने के लिए पापी लोगों को इनका माँस दान किया

और स्वयं खाया। अनन्तर ये दोनों मरकर बकरा और बकरी हुए। पुनः बकरा और भैंसा हुए। वहाँ भी इनका माँस पका-पकाकर पापियों ने खाया। पुनः मरकर मुर्गा-मुर्गी हुए। उस पर्याय में एक मुनिराज का उपदेश सुनकर जाति-स्मरण से प्रबुद्ध हुए और संसार के दुःखों से डर गये और मन में जैनधर्म स्वीकार कर लिया। इतने में ही राजा यशोमति (यशोधर के पुत्र) ने अपने बाण से इन कुक्कुट युगल को घायल कर दिया। ये दोनों मरकर यशोमति महाराज की कुसुमावली रानी से युगल पुत्र-पुत्री होकर जन्मे। पुत्र का नाम अभयरुचि और पुत्री का नाम अभयमती रखा गया।

किसी समय अभयरुचि और अभयमति—भाई-बहन ने मुनिराज का उपदेश सुना और अपने भव-भवांतर भी सुने। सुनते ही उन्हें जातिस्मरण हो गया। सारी वेदना को स्मरण करते ही वे दोनों विरक्त होकर सुदत्ताचार्य गुरू के पास दीक्षा याचना करने लगे। गुरू ने इनको कोमल लघुवय देखकर अभी इन्हें क्षुल्लक दीक्षा दी है। आगे यह दोनों मुनि और आर्यिका बन जायेंगे।

हे राजन्! वे क्षुल्लक-क्षुल्लिका युगल भाई-बहन हमें ही समझो। देखो! मैंने आटे का मुर्गा बनाकर बलि की थी तो इतने दुःख उठाये हैं। यदि आप साक्षात् इतने प्राणियों की हिंसा करोगे तो आपकी क्या गति होगी? उसी समय राजा का हृदय करुणा से भर गया और तो क्या चंडमारी देवी का हृदय भी पिघल गया। वह पापों के फल से डरकर शीघ्र ही अपना असली रूप प्रगट कर क्षुल्लक के चरणों में गिरकर क्षमा याचना करने लगी। उस समय राजा ने, देवी ने, सभी पुजारियों ने और तमाम प्रजा ने हिंसा का त्यागकर अहिंसा के उपदेश को ग्रहण कर लिया।

शिष्य वर्ग—धन्य है इन क्षुल्लक-क्षुल्लिका को, जिन्होंने इतने जीवों को पाप से बचाया और नरकों में जाने से रोक लिया।

अध्यापक—बालकों! आज भी जैन साधु-साध्वी बहुत से जीवों को माँस त्याग का, हिंसा न करने का नियम देते हैं। सच है, जैन साधुगण असंख्य प्राणियों का उपकार करते हैं। इतना उपकार और कोई भी नहीं कर सकते हैं। बालकों! मैंने यह कथा बहुत ही थोड़े में सुनाई है। तुम लोग यशोधर चरित्र अवश्य पढ़ो उसमें तुम्हें विस्तृत वर्णन मिलेगा।

शिष्य वर्ग—अच्छा गुरूजी! हम लोग यशोधर चरित्र अवश्य ही पढ़ेंगे और दूसरों को भी पढ़ायेंगे।

राम और सुग्रीव

अशोक—पिताजी! आज सड़क पर एक मरणासन्न गाय पड़ी हुई साँस ले रही थी और कुछ महिलायें उसे णमोकार मन्त्र सुना रही थीं। ऐसा सुनाने से क्या होता है?

पिताजी—बेटा अशोक! मरणासन्न अथवा दुःखी किसी भी प्राणी को णमोकार मन्त्र सुनाने से बहुत ही पुण्य होता है और वह जीव मरकर स्वर्गादि के अभ्युदय को प्राप्त कर लेता है। सुनो! मैं तुम्हें इस सम्बन्ध में एक कथा सुनाता हूँ।

महापुर नगर के एक जैनधर्म के श्रद्धालु पद्मरुचि सेठ किसी समय घोड़े पर चढ़कर अपने गोकुल की तरफ जा रहे थे। उन्होंने उस समय पृथ्वी पर पड़े हुए एक बूढ़े बैल को देखा। पद्मरुचि घोड़े से उतरकर दया बुद्धि से उसके पास बैठकर कान में णमोकार मन्त्र सुनाने लगे। उस मन्त्र को सुनते हुए बैल की आत्मा शरीर से निकल गई और मन्त्र के प्रभाव से उसी नगर के राजा छत्रच्छाय की रानी श्रीदत्ता के गर्भ में आ गयी व नवमास के बाद पुत्र के रूप में उत्पन्न हो गया। उसका नाम वृषभध्वज रखा गया।

अनन्तर पूर्व संस्कार से उसे पूर्व जन्म का स्मरण हो गया। बैल पर्याय के बोझा ढोना आदि दुःखों तथा मरते समय महामन्त्र श्रवण उसके स्मृति पटल पर झूलने लगा। वह बाल-लीलाओं में आसक्त होते हुए भी णमोकार मन्त्र का सदा ध्यान रखता था। किसी एक दिन वह घूमता हुआ उसी स्थान पर पहुँचा जहाँ उस बैल का मरना हुआ था। वहाँ के सभी स्थानों को पहचानकर अपने उपकारी को ढूँढने के उपाय सोचने लगा। कुछ सोचकर उसने उसी स्थान पर कैलाश के शिखर सदृश एक जिनमन्दिर बनवाया और उसमें चित्रपट पर महापुरुषों के चरित्र लिखवाये। उसी मन्दिर के द्वार पर अपने पूर्व भव के मित्र से चित्रित एक चित्रपट लगवा दिया तथा उसकी परीक्षा करने के लिये चतुर मनुष्य उसके समीप खड़े कर दिये।

कदाचित् वन्दना की इच्छा करते हुए पद्मरुचि श्रावक एक दिन उस मन्दिर में आ गये और आश्चर्यचकित हो उस चित्र को देखने लगे और मन में सोचने लगे कि णमोकार मन्त्र सुनाते हुए यह मेरा ही चित्र किसने बनाया है!

अत्यधिक एकाग्रता से इनको चित्रपट देखते हुए इनके मनोभाव को समझकर रक्षक लोगों ने शीघ्र ही वृषभध्वज राजकुमार को यह समाचार पहुँचा दिया।

वृषभध्वज हाथी पर सवार हो वहाँ आकर परमोपकारी पद्मरुचि सेठ को पहचानकर उनके चरणों में गिर गया और यह बताया कि यह बैल का जीव मैं ही हूँ। जिस प्रकार उत्तम शिष्य गुरू की पूजा कर सन्तुष्ट होता है उसी प्रकार वह राजकुमार पद्मरुचि की पूजा कर सन्तुष्ट हुआ और नाना प्रकार से स्तुति करते हुए बोला कि हे परम दयालु सेठ! मृत्यु के संकट में आपने हमें समाधिरूपी अमृत का संबल देकर इस उत्तम भव को प्राप्त कराया है। इस मन्त्रदान का मूल्य यद्यपि मैं नहीं चुका सकता, फिर भी आज्ञा दो—मैं आपका क्या उपकार करूँ? इत्यादि उत्तम शब्दों से प्रसन्न करता हुआ भक्ति में विभोर हो गया। उस समय दोनों का परस्पर में अत्यधिक प्रेम हो गया और दोनों को सम्यक्त्व की प्राप्ति हो गयी। दोनों ने श्रावक के व्रत ग्रहण कर लिये। उन दोनों ने इस पृथ्वी पर अनेक जिनमन्दिर और जिनबिम्ब बनवाये। सफेद कमल के समान स्तूपों से सैकड़ों बार पृथ्वी को अलंकृत किया।

आयु के अन्त में मरकर दोनों ही ऐशान स्वर्ग में देव हो गये। अनन्तर कुछ भवों के पश्चात् पद्मरुचि का जीव दशरथ का पुत्र राम हुआ और वृषभध्वज का जीव सुग्रीव हुआ है। सुग्रीव विद्याधर ने सीता की खबर मँगाने में और रावण के साथ युद्ध में रामचन्द्र की सहायता की है। अनन्तर ये रामचन्द्र, सुग्रीव, हनुमान आदि महापुरुष दिगम्बरी दीक्षा लेकर घोराघोर तपश्चरण करके तुंगीगिरि पर्वत से मोक्ष गये हैं। हम लोग प्रतिदिन निर्वाण काण्ड[1] में इन सिद्धस्वरूप महापुरुषों की वन्दना करते हैं।

अशोक—पिताजी! मैं भी इस 'निर्वाण काण्ड' को अथवा उषा वन्दना[2] को प्रतिदिन पढ़ा करूँगा और णमोकार मन्त्र की जाप भी करूँगा।

पिताजी—ये स्तुति और मन्त्र ही इस जीव को अनेकों सुखों को प्राप्त कराकर अन्त में मोक्ष को भी प्राप्त करा देते हैं।

---

1. राम हणू सुग्रीव सुडील, गय गवाख्य नील महानील।
कोटि निन्यानवे मुक्तिपयान, तुंगीगिरि वन्दों धर ध्यान।।—निर्वाण काण्ड

2. राम हनुमान सुग्रीव गव-गवाख्य नील महानील यति।
निन्यानवे कोटि मुनि तुंगीगिरि से शिव गये करो नति।।—उषा वन्दना

क्या वीर भगवान हम जैसे साधारण मानव थे?

कमल कुमार—गुरूजी! भगवान महावीर के पच्चीससौवें निर्वाण महोत्सव वर्ष में एक वर्ष तक धर्मचक्र का प्रवर्तन हो रहा था। हमारे गाँव में भी धर्मचक्र का जुलूस निकाला गया था। बहुत ही धर्म प्रभावना हुई थी। गुरूजी! उस समय कुछ लोग कह रहे थे कि भगवान महावीर बचपन में हम जैसे ही साधारण मनुष्य थे। अनन्तर उन्होंने सभी जनों का उपकार किया इसीलिये वह महावीर भगवान बन गये।

गुरूजी—नहीं बेटा! वे प्रारम्भ से ही अलौकिक महापुरुष थे। हाँ, पूर्व जन्म में वे अवश्य ही हम-आप जैसे साधारण मानव थे। उनके गर्भ में आने के छह महीने पहले से ही नगरी में माता के आँगन में रत्नों की वर्षा का होना, श्री, ह्री आदि देवियों द्वारा जिनमाता की सेवा करना, सौधर्म इन्द्र आदि देवों द्वारा जिन बालक का गर्भ महोत्सव और जन्मोत्सव आदि मनाया जाना, यह सब अलौकिक अभ्युदय हैं। वैसे ही जिन बालक माता का दूध नहीं पीते हैं। इन्द्र के द्वारा अपने अँगूठे में स्थापित अमृत को पीते हैं। जिन बालक के लिये दिव्य वस्त्र, अलंकार और भोजन देवों द्वारा स्वर्ग से ही लाया जाता है। दीक्षा लेने के पहले तक भगवान स्वर्ग के ही दिव्य भोजन-पान को करते हैं।

भगवान के जन्म के दस अतिशय होते हैं—शरीर का अतिशय सुगन्धित होना, पसीना रहित होना, मल-मूत्रादि से रहित होना, अतिशय सुन्दर होना, दूध के समान उज्जवल रक्त का होना, समचतुरस्त्र संस्थान का होना, वज्रवृषभनाराच संहनन का होना, एक हजार आठ लक्षणों का होना, अतुल्य बल का होना और प्रियहित वचन का होना। तीर्थंकर बालक में जन्म से ही ये दस विशेषताएँ पायी जाती हैं। इन्हें ही दस अतिशय कहते हैं।

वे गर्भ में भी मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान से सहित होते हैं। वे किसी को विद्यागुरू अथवा दीक्षागुरू नहीं बनाते हैं। स्वयं ही स्वयंबुद्ध, स्वयंभू होते हैं। हाँ, पूर्व जन्म में उनके दीक्षागुरू अवश्य ही होते हैं। इससे यह भी स्पष्ट है कि तीर्थंकर के सिवाय किसी को भी स्वयं दीक्षा लेने का अधिकार नहीं है। समंतभद्र स्वामी ने भी कहा है कि—

मानुषीं प्रकृतिमभ्यतीतवान् देवतास्वपि च देवता यतः।
तेन नाथ! परमासि देवता श्रेयसे जिन वृष! प्रसीद नः।।

हे नाथ! आपने मनुष्य रूप लेकर भी मानुषी प्रकृति का उल्लंघन कर दिया है। इसीलिए आप देवताओं से पूज्य होने से देवताओं में भी देवता हैं। अतः आप परम देवता हैं। जिनदेव! मोक्ष के लिये मुझ पर प्रसन्न होइये। अच्छा कमल! और विशेषताएँ अन्य किसी दिन सुनाएँगे।

कमल कुमार—अच्छा गुरूजी! प्रणाम।

णमोकार मंत्र स्तवन

—शिखरिणी छंद—

णमो अरिहंताणं, नमन है अरिहंत प्रभु को।
णमो सिद्धाणं में, नमन कर लूँ सिद्ध प्रभु को।।
णमो आइरियाणं, नमन है आचार्य गुरु को।
णमो उवज्झायाणं, नमन है उपाध्याय गुरु को।।1।।

णमो लोए सव्वसाहूणं पद बताता।
नमन जग के सब साधुओं को करूँ जो हैं त्राता।।
परमपद में स्थित कहें पाँच परमेष्ठि इनको।
नमन इनको करके लहूँ इक दिन मुक्ति पद को।।2।।

सभी के पापों को शमन करता मंत्र यह ही।
तभी सब मंगल में प्रथम माना मंत्र यह ही।।
जपें जो भी इसको वचन मन कर शुद्ध प्रणति।
लहें वे इच्छित फल, हृदय नत हो चन्दनामति।।3।।

सच्चे बान्धव

सरोज कुमार—भाई अशोक! यदि कोई भी साधु किसी शिष्यादि को यह मेरा है, ऐसा कह देते हैं तो वे निश्चित ही इस ममकार की भावना से मिथ्यादृष्टि हो जाते हैं।

अशोक कुमार—नहीं मित्र! ऐसी बात नहीं है। इतना कहने मात्र से ही मिथ्यात्व नहीं हो जाता है। देखिये! अनेकों ऐसे उदाहरण हैं जो शास्त्रों में भावलिंगी मुनियों के हैं।

जिस समय रावण दिग्विजय के लिए निकले थे उस समय की घटना है—वे सेना सहित विंध्याचल पर पहुँचे। वहीं पर नर्मदा नदी के किनारे ऊँचे बालू के टीले पर रत्नों की जिनेन्द्र भगवान की प्रतिमा को विराजमान करके विधिवत् पूजन करने लगे। इधर रावण पूजा में निमग्न थे। उधर माहिष्मती नगरी के राजा सहस्ररश्मि अपनी हजारों स्त्रियों के साथ जल-क्रीड़ा करने के लिए आये थे। उनके साथ तमाम जलयंत्र थे जिससे जल का प्रवाह बहुत दूर तक जा रहा था। वह जल इस तरफ भी जोर से आया और रावण की पूजा की सामग्री को बहा ले गया। रावण ने शीघ्र ही उठकर भगवान की प्रतिमा को सिर पर विराजमान किया। पुनः अन्यत्र पूजन विधि प्रारम्भ की। अनन्तर कर्मचारियों से कहा कि पता लगाओ यह क्या बात है? कर्मचारियों ने आकर सारी बात बता दी।

तब रावण क्रोध से युक्त हो युद्ध के लिए निकला। उधर राजा सहस्ररश्मि भी तैयार हो गया। दोनों की सेना में घमासान युद्ध हुआ। अन्त में रावण ने सहस्ररश्मि को जीवित ही बाँध लिया और अपने डेरे पर ले आये।

सहस्ररश्मि के पिता शतबाहु दिगम्बर मुनिराज थे जो कि जंघाचारण ऋद्धि के धारी महातपस्वी भावलिंगी महामुनि थे। जब उन्हें सहस्ररश्मि के बाँधे जाने का समाचार विदित हुआ तब वे अकस्मात् ही अपनी चारणऋद्धि के बल से वहाँ रावण के डेरे पर आ गये। रावण ने भी उठकर विनयभक्ति करते हुए महामुनि को काष्ठासन पर विराजमान किया। अनन्तर चरणों के समीप अतीव विनीत होकर बैठ गया और रत्नत्रय कुशल आदि पूछकर बोला कि हे भगवन्! आपके यहाँ आने का कारण हमें पवित्र करने के सिवाय और क्या हो सकता है, सो कृपया निवेदन कीजिये?

तब मुनिराज ने कहा कि हे रावण! मेरे पुत्र को छोड़ दीजिये। मुनिराज के ऐसे वचन सुनते ही रावण ने अपने पुत्रों को आज्ञा दी कि सहस्ररश्मि को ले आओ तथा इसी बीच में सारी घटना सुनाते हुए यह कहा कि हे भगवन्! मेरी पूजा में विघ्न होने के बाद भी यदि सहस्ररश्मि यह बोल देता कि मुझे मालूम नहीं था, अतः ऐसा हो गया, सो क्षमा कर दो, तब मुझे गुस्सा नहीं आता। उसी बीच सहस्ररश्मि भी आकर अपने पूज्य पिता और महामुनि ऐसे शतबाहु को नमस्कार करके विनयपूर्वक धरती पर बैठ गया।

उस समय रावण ने बड़े प्रेम से कहा कि आज से आप हमारे चौथे भाई हैं। अब हम आपके साथ ही मिलकर सभी दिशाओं को जीतेंगे। तब सहस्ररश्मि ने कहा कि हे रावण! यह राज्य वैभव, यौवन आदि सब क्षणभंगुर हैं। जिन्होंने आज मुझे इस बन्धन से छुड़ाया है वह ही हमें शीघ्र ही संसार-बन्धन से छुड़ायेंगे। रावण के अत्यधिक अनुनय और प्रेम आदि करने पर भी राजा सहस्ररश्मि ने अपने पूज्य पिता के साथ जाकर जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण कर ली और संसाररूपी कारावास से छूटने के लिए घोराघोर तपश्चरण करने लगे। देखो, ऐसे माता-पिता, कुटुम्बी आदि ही सच्चे बांधव कहलाते हैं किन्तु जो भोगों में फँसाकर धर्म मार्ग से च्युत कर देते हैं वे माता-पिता, कुटुम्बी आदि सच्चे बांधव नहीं हैं प्रत्युत्‌बांधवगण बन्धन के ही मूल हैं, ऐसा समझना चाहिये।

सरोज कुमार—बंधुवर! इस कथानक से स्पष्ट हो जाता है कि यह मेरा है, ऐसा कहने मात्र से ही मुनि मिथ्यादृष्टि नहीं हो जाते हैं। वे आचार्य पद पर रहते हुए तमाम संसारी प्राणियों को निकाल-निकालकर आत्मीयता से संरक्षण करते हुए उन्हें मोक्षमार्ग में लगा देते हैं। वे गुरूदेव सच्चे बन्धु हैं, न कि मिथ्यादृष्टि। यह बात मेरी समझ में आ गई है। अच्छा, अब मैं इन छोटी-छोटी बातों के प्रसंगों में मुनियों की निन्दा नहीं करूँगा।

1. ममांगजं मुञ्च (पद्मपुराण)

पाप का फल सर्वथा बुरा है

"हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह इन पाँचों पापों से परलोक में भले ही दुःख हो किन्तु इस लोक में तो सुख मिलता ही है और अपने को तो इस जन्म में ही आनन्द चाहिये। परलोक भला किसने देखा है!"

"नहीं, नहीं, ऐसी बात नहीं है। पापों के सेवन से इस जन्म में भी अनेक दुःख भोगने पड़ते हैं। हिंसक, क्रूर, झूठे, चोर या कुशीली लोग अच्छे लोगों की नजर में निंद्य पापी गिने जाते हैं और विश्वास के अपात्र हो जाते हैं। एक पौराणिक इतिवृत्त को देखिये–

किसी समय विदेह क्षेत्र में एक मुनिराज सर्प-सरोवर के निकट के वन में आये। एक देव युगल ने उनके दर्शन करके सन्तुष्ट मुनिराज से धर्मोपदेश देने की प्रार्थना की, तब मुनिराज कहने लगे–

मैं अभी नवदीक्षित हूँ। अतः धर्मोपदेश देने में समर्थ नहीं हूँ। चूँकि यह उपदेश देने का कार्य समस्त शास्त्रों में पारंगत मुनियों का ही है, फिर भी किंचित् कहता हूँ सो सुनो, ऐसा कहकर मुनिराज ने सम्यग्दर्शन, सत्पात्रदान, श्रावक धर्म व मुनिचर्या आदि का किंचित् उपदेश दिया। पुनः देव कहता है– "भगवन्! आपने किस कारण से मुनि दीक्षा ली है सो कृपा कर कहिये।" मुनिराज बोले–"विदेह क्षेत्र की पुंडरीकिणी नगरी में मैं एक दरिद्र कुल में उत्पन्न हुआ। मेरा नाम भीम रखा गया। कुछ बड़ा होने पर काललब्धि आदि के निमित्त से एक दिन मैंने एक मुनिराज के दर्शन किये। उनके पास मैंने आठ मूलगुण ग्रहण कर लिये और घर आ गया। जब पिता को इस बात का पता चला तो वे कहने लगे–"अरे पुत्र! हम लोग महादरिद्री हैं, सो हम लोगों को व्यर्थ के इन कठिन व्रतों से क्या प्रयोजन! इनका फल इस लोक में तो मिलता नहीं, अतः आ चल। स्वर्ग के इच्छुक उस मुनि को ही ये व्रत वापस कर आयें। हम लोग तो इस लोक सम्बन्धी फल चाहते हैं जिससे कि जीविका चल सके अतः व्रत देने वाले गुरू का स्थान मुझे दिखा। ऐसा कहकर पिता मुझे साथ लेकर चल पड़े।"

मार्ग में मैंने देखा कि वज्रकेतु नाम के एक पुरुष को दण्ड दिया जा रहा है तब मैंने पिता से कारण पूछा और वे ज्ञात कर कहने लगे–"यह सूर्य की

किरणों में अनाज सुखा रहा था। किसी मन्दिर का मुर्गा उसे खाने लगा तब उसको इसने इतना मारा कि वह मर गया, इसीलिए लोग इसे दण्ड दे रहे हैं।"

आगे बढ़कर मैंने देखा कि धनदेव की जीभ निकाली जा रही है। पूछने पर पिता ने बतलाया कि–"इसने जिनदेव के द्वारा रखी गई धरोहर को हड़प लिया और झूठ बोल गया। भेद खुलने पर इसकी जीभ उखाड़ी जा रही है।"

आगे देखा कुछ लोग रतिपिंगल को शूली पर चढ़ाने के लिये ले जा रहे हैं। पूछने पर ज्ञात हुआ कि इसने एक सेठ के घर से बहुमूल्य मणियों का हार चुराकर एक वेश्या को दे दिया, सो कोतवाल द्वारा पकड़ा जाने पर इसे प्राणदण्ड की आज्ञा हुई है।

आगे बढ़ने पर देखा कि एक कोतवाल का सिपाही लोग गुह्य अंग काट रहे हैं। पूछने पर पता चला कि इस पापी ने अपनी मौसी की पुत्री के घर जाकर रात्रि में उससे व्यभिचार किया है अतः राजाज्ञा से राज्य कर्मचारी इसे ऐसा दण्ड दे रहे हैं।

और आगे बढ़ने पर देखा कि लोल नामक एक किसान विलाप कर रहा है। पूछने पर मालूम हुआ कि इसने खेत के लोभ में अपने बड़े लड़के को डंडों से इतना मारा कि वह मर गया। इससे उसे देशनिर्वासन दण्ड दिया गया है, अतः यह बिलख रहा है।

आगे बढ़ते ही देखा कि सागरदत्त ने जुए में समुद्रदत्त का बहुत-सा धन जीत लिया, परन्तु समुद्रदत्त उस धन को देने में असमर्थ था। अतः उसने क्रोध से बहुत देर तक उस समुद्रदत्त को दुर्गन्धित धुँए के बीच में बैठा रखा है। पुनः किसी जगह मैंने देखा कि आनन्द महाराज द्वारा अभय घोषणा कराये जाने पर भी उन्हीं के पुत्र अंगद ने राजा के मेढ़े को मार कर खा लिया। इसके दण्ड में उसके हाथ काट कर उसे विष्ठा का भक्षण कराया जा रहा है। पुनः अन्य स्थान पर देखता हूँ कि शराब पीने वाली महिला ने शराब खरीदने के लिए किसी के बालक को मारकर जमीन में गाड़ दिया और उसके जेवर निकाल लिये। भेद खुल जाने पर राजकर्मचारी उसे दण्ड दे रहे हैं।

हिंसा आदि पापों से होने वाले इन फलों को मैंने प्रत्यक्ष में देखा। अतः मैंने यह निश्चय कर लिया के ये महापाप इस भव में तो नाना दुःख देने वाले हैं ही तथा परलोक में भी इनका फल नरक निगोद ही है। मैंने भी जो दरिद्रता

पाई है वह भी तो पाप का ही फल है। अतः मैंने अपने पिता को छोड़कर मोक्ष की इच्छा से उन्हीं गुरू के पास जैनेश्वरी दीक्षा ग्रहण कर ली है। गुरू के प्रसाद से मैं शीघ्र ही सर्वशास्त्र समुद्र का पारगामी हो गया हूँ और मेरी बुद्धि भी विशुद्ध हो गई है। इसीलिए पाप और पुण्य का फल इस जीव को संसार में भोगना ही पड़ता है। उसी के फलस्वरूप अनेक दुःख और राजवैभव आदि सुख भी मिलते रहते हैं। जब पुण्य, पाप को छोड़कर यह जीव निर्विकल्प ध्यान में स्थित हो जाता है तब शुद्धोपयोग के बल से कर्मों का नाश कर मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। अतः परलोक और मोक्ष आदि को भी स्वीकार करना ही चाहिये।

मुनिराज के इस अपनी दीक्षा के कारण को सुनकर देव अतीव प्रभावित हुए।

24 भगवान की 16 जन्मभूमियों की नामावली

1. **अयोध्या (फैजाबाद-उ.प्र.)**–श्री ऋषभदेव भगवान, श्री अजितनाथ भगवान, श्री अभिनंदननाथ भगवान, श्री सुमतिनाथ भगवान, श्री अनंतनाथ भगवान
2. **श्रावस्ती (बहराइच-उ.प्र.)**–श्री संभवनाथ भगवान
3. **कौशाम्बी (उ.प्र.)**–श्री पद्मप्रभु भगवान
4. **वाराणसी (उ.प्र.)**–श्री सुपार्श्वनाथ भगवान, श्री पार्श्वनाथ भगवान
5. **चन्द्रपुरी (वाराणसी) उ.प्र.**–श्री चन्द्रप्रभु भगवान
6. **काकन्दी (देवरिया नि.-गोरखपुर) उ.प्र.**–श्री पुष्पदंतनाथ भगवान
7. **भद्रिकापुरी, इटखोरी (चतरा-झारखंड)**–श्री शीतलनाथ भगवान
8. **सिंहपुरी (सारनाथ) उ.प्र.**–श्री श्रेयांसनाथ भगवान
9. **चम्पापुरी (भागलपुर-बिहार)**–श्री वासुपूज्यनाथ भगवान
10. **कम्पिलपुरी (फर्रुक्खाबाद-उ.प्र.)**–श्री विमलनाथ भगवान
11. **रत्नपुरी (फैजाबाद-उ.प्र.)**–श्री धर्मनाथ भगवान
12. **हस्तिनापुर (मेरठ-उ.प्र.)**–श्री शांतिनाथ भगवान, श्री कुन्थुनाथ भगवान, श्री अरनाथ भगवान
13. **मिथिलापुरी**–श्री मल्लिनाथ भगवान, श्री नमिनाथ भगवान
14. **राजगृही (नालंदा-बिहार)**–श्री मुनिसुव्रतनाथ भगवान
15. **शौरीपुर (बटेश्वर-उ.प्र.)**–श्री नेमिनाथ भगवान
16. **कुण्डलपुर (नालंदा-बिहार)**–श्री महावीर भगवान

भोग से त्याग महान्

पद्मिनी नामक नगर में किसी समय 'मतिवर्धन' नाम के दिगम्बराचार्य चतुर्विध संघ सहित पधारे। उनके संघ में महातपस्वी ज्ञानी और ध्यानी सभी तरह के मुनि धर्मध्यान में परायण थे। 'अनुद्धरा' नाम की आर्यिका थीं जो कि सर्व आर्यिकाओं की रक्षा करने में तत्पर गणिनी थीं। यह विशाल संघ वहाँ आकर नगर के बाहर उद्यान में आचार्यदेव की आज्ञा से ठहर गया। उस उद्यान का माली अपने साथियों को साथ लेकर भय से काँपता हुआ पद्मिनी नगरी के महाराज विजयपर्वत के राज दरबार में पहुँचा और नमस्कार करके निवेदन करने लगा–"महाराज! आगे तो बहुत अधिक ऊँची ढालू चट्टान है और पीछे व्याघ्र है बताइये हम किसकी शरण में जाएँ?"

महाराज ने आश्चर्य से पूछा–"बोलो, बोलो, क्या कह रहे हो? क्या संकट उपस्थित हुआ है?"

उन किंकरों में प्रमुख वनपाल ने कहा–"महाराज! उद्यान की रमणीय भूमि में मुनियों का एक विशाल संघ आकर ठहर गया है। यदि इस संघ को हम मना करते हैं तो शाप को प्राप्त होते हैं और यदि नहीं मना करते हैं तो आपके क्रोध को प्राप्त होंगे। इस प्रकार हम लोगों पर बड़ा संकट आ पड़ा है। हे राजन्! आपके प्रसाद से हम लोगों ने वह उद्यान कल्पवृक्षों के उद्यान के समान बना रखा है। उसमें साधारण पामर मनुष्य प्रवेश भी नहीं कर सकते हैं, किन्तु जो तप के तेज से अत्यन्त दुर्गम हैं ऐसे निर्ग्रन्थ मुनियों को देव भी रोकने में समर्थ नहीं हैं फिर भला हम जैसे लोगों के द्वारा कैसे रोका जा सकता है?"

यह सुनकर राजा आश्चर्य से युक्त होकर उन लोगों को सान्त्वना देते हुए बोले–"डरो मत, वे मुनिगण ठहर चुके हैं तो अब कोई बात नहीं है। हम स्वयं ही वहाँ आ रहे हैं।"

पुनः राजा विशाल वैभव के साथ उद्यान भूमि में पहुँचकर उस चतुर्विध संघ को देखता है। यहाँ पर सभी साधु वन की धूलि से धूसरित हो रहे थे। उनमें से कोई मुनिराज जिनेन्द्र देव की स्तुति वन्दना में तत्पर थे, कोई भुजाओं को लटकाकर जिनमुद्रा से ध्यान कर रहे थे। कोई स्वाध्याय में लीन थे, कोई अध्ययन कर रहे थे तो कोई महाविद्वान मुनि अन्य साधुओं को सिद्धान्त ग्रन्थों

का अध्ययन करा रहे थे। किन्हीं मुनियों के शरीर बेला-तेला आदि उपवासों से अतिशय क्षीण हो रहे थे फिर भी उनके चेहरे पर दीप्ति व उनका अपना उत्साह उनके आत्मबल को व उनके मनोबल को स्पष्ट घोषित कर रहा था।

एक तरफ आर्यिकाओं के समुदाय में भी वन की धूलि से लिप्त एक साड़ी-मात्र परिग्रह को धारण करने वाली उन आर्यिकाओं में कुछ आर्यिकाएँ मधुर स्वर से पाठ गुनगुना रही थीं। कुछ स्वाध्याय क्रिया में तत्पर थीं, कुछ पठन-पाठन में व्यस्त थीं, कहीं पर न्याय ग्रन्थों का अध्ययन चल रहा था तो कहीं पर आध्यात्मिक चर्चा हो रही थी। कहीं पर सिद्धान्त के गूढ़ रहस्यों का उद्घाटन हो रहा था, तो कहीं पर महापुरुषों के चरित्र का बखान चल रहा था।

राजा क्रम-क्रम से सभी साधु-साध्वियों की वन्दना करते हुए उनके गुणों से प्रसन्न हो रहे थे। अन्त में वे आचार्य देव की वन्दना करके उनके निकट बैठकर विनयपूर्वक बोले–"भगवन्! आपके शुभ लक्षणों से युक्त जैसी आपकी दीप्ति है वैसे भाग आपके चरण कमल में स्थित क्यों नहीं हैं?"

आचार्यदेव ने उत्तर दिया–"हे नरश्रेष्ठ! ये संसार के विषय भोग सुखदायी हैं, यह कल्पना कहाँ तक सत्य है? पहले आप इसे समझें तब आपको पता चलेगा कि ये भोग महान् नहीं हैं, प्रत्युत् इनको तृणवत् समझकर इनका त्याग करने वाले ही महान हैं। देखो! यह जीवन, यह यौवन, यह राज्यसंपदा, यह विशाल वैभव कितने दिन तक टिकने वाला है? क्या इसमें से कोई भी वस्तु स्थायी शान्ति दे सकती है?"

राजा गुरूदेव के इन प्रश्नों को सुनकर कुछ क्षण के लिये परम विस्मय को प्राप्त हो गया और विचार करने लगा कि वास्तव में इनमें से कुछ भी तो टिकने वाला नहीं है। पुनः किस वस्तु से सुख की आशा की जाये? पुनरपि राजा प्रश्न करता है–"भगवन्! पुनः इस संसार में स्थायी वस्तु क्या है?"

गुरूदेव ने उत्तर दिया–"राजन्! स्थायी वस्तु अपनी आत्मा है और उसका सुख ही सच्चा सुख है। यह शरीर नश्वर है, जड़ है और अनन्त दुःखों की खान है।"

इत्यादि रूप से मुनिपति के मुखकमल से निर्गत धर्मोपदेश को सुनकर राजा संसार के भोगों से विरक्त हो गया और उसी समय वह अपने विशाल वैभव को जीर्ण तृणवत् त्यागकर दिगम्बर मुनि हो गया। उस समय राजा को

दीक्षित हुआ देखकर अनेकों भव्य जीवों ने जैनेश्वरी दीक्षा ले ली। जो दीक्षा लेने में अपने को सर्वथा असमर्थ समझ रहे थे ऐसे अनेकों ने श्रावक के व्रत ग्रहण कर लिये।

सच है, यदि त्याग का महत्त्व अधिक न होता तो बड़े-बड़े राजा, महाराजा, चक्रवर्ती और इन्द्र भी मुनियों को नमस्कार क्यों करते?

गुरुवंदना

माता तेरे चरणों में, वन्दन हम करते हैं।
तेरे ज्ञान की गरिमा का, अभिवन्दन करते हैं।।

मेरे मन के अंधेरे में, कुछ ज्ञान प्रकाश भरो।
जीवन के सवेरे में, अब कुछ तो विकास करो।।

पावन पद कमलों में, शत वन्दन करते हैं।
तेरे ज्ञान की गरिमा का, अभिवंदन करते हैं।।1।।

चंचल चित का चिन्तन, चिरकाल से भी न रुका।
अज्ञान में उलझा मन, निज ज्ञान पे भी न टिका।।

श्रुतज्ञान के उपवन में, अभिसिंचन करते हैं।
तेरे ज्ञान की गरिमा का, अभिवंदन करते हैं।।2।।

शिवपथ की मंजिल का, हमें ज्ञान हुआ कुछ माँ।।
शुद्धातम मंदिर का, अब ज्ञान दिया मिला कुछ माँ।।

"चन्दना" तेरे पद में, हम तर्पण करते हैं।
तेरे ज्ञान की गरिमा का, अभिवंदन करते हैं।।3।।

व्यसनी की संगति से हानि

गुरूजी—बेटे विनोद! तुम ऐसे लड़कों की संगति मत किया करो कि जो लड़के शराब पीते हैं।

विनोद—क्यों गुरूजी! शराब पीने में क्या दोष है?

गुरूजी—बेटा! यह शराब मनुष्य को बेहोश कर देती है। वह मनुष्य शराब के नशे में पता नहीं क्या-क्या अनर्थ कर डालता है। सुनो, तुम्हें एक प्राचीन घटना सुनाता हूँ—

एकपात नाम का एक सन्यासी किसी समय गंगा स्नान के लिये अपने नगर से चला। मार्ग में वह विंध्याटवी में पहुँच गया। वहाँ पर भीलों का एक भारी झुण्ड यौवन के मद में उन्मत्त होकर शराब पी रहा था और मस्त हुई विलासिनी महिलाओं के साथ काम-सेवन कर रहा था तथा माँस का भी भक्षण कर रहा था। उस सन्यासी को देखते ही उन भीलों ने उसे पकड़ लिया और नशे में झूमते हुए वे लोग बोले—"बाबाजी! तुम अब हमारे मेहमान बन गये हो। अतः मद्य, माँस और स्त्री सेवन इन तीनों में से तुम्हें किसी एक का सेवन करना ही होगा। वह तापसी बहुत ही गिड़गिड़ाया और उन लोगों के हाथों से निकलना चाहा किन्तु उन लोगों ने नहीं छोड़ा और कहा कि आप यदि इन तीनों में से एक का सेवन नहीं करोगे, तो आज जीते-जी गंगा का दर्शन नहीं कर सकते।

कुछ क्षणों तक वह तापसी विचार करता रहा कि स्मृति-ग्रन्थों में ऐसा लिखा है कि तिल या सरसों बराबर भी माँस खाने से बड़ी-बड़ी विपत्तियाँ उठानी पड़ती हैं। भीलनी के साथ सम्बन्ध करने से भी बहुत बड़ा पाप लगता है किन्तु सौत्रामणि यज्ञ में तो शराब पीने की अनुमति दी है। अतः शराब पीने में क्या दोष है? वह तो शुद्ध ही है। ऐसा सोचकर उसने शराब पी ली। उसके पीते ही उसका मन चंचल हो उठा। नशे में उन्मत्त होकर उसने अपनी लंगोटी खोल डाली और शराब पीकर उन्मत्त हुई भिल्लनियों के साथ तालियाँ बजा-बजाकर नाचने-कूदने लगा। उस समय उसकी ऐसी दशा हो गई कि मानों उसके शरीर में कोई भूत घुस गया है। उसने अनेक विकृत चेष्टायें कीं और फिर भूख से पीड़ित होकर माँस भी खा लिया। उससे उसे असह्य कामोद्रेक हुआ और उसने भिल्लनी के साथ काम-सेवन भी किया।

देखो विनोद! एक शराब मात्र को पीने से उस एकपात सन्यासी ने माँस भी खाया और पर-स्त्री का उपभोग भी किया अतः शराबियों की संगति से सदा ही दूर रहना चाहिये।

विनोद! जिसने शराब का त्याग कर दिया था उसे क्या लाभ हुआ? सो भी सुनो—

वलभो नगरी में पाँच चोर रहते थे। उनमें से करवाल नाम का चोर मकानों में सेंध लगाने में कुशल था। वट्ट दरवाजा खोलने में कुशल था, धूर्तिल महानिद्रा बुलाने में कुशल था। शारद छिपाये हुए धन का स्थान खोज निकालने में कुशल था और कृकिलास नाम का व्यक्ति ठग विद्या में निपुण था। पाँचों में परस्पर बड़ी प्रीति थी और अपने उद्यम तथा साहस में वे लोग शिव के अर्धांग में निवास करने वाली पार्वती को, विष्णु के हृदय में बसने वाली लक्ष्मी को और दुर्गा की आँखों में लगे हुए अंजन को भी चुराने में समर्थ थे। वे चोरों के भी चोर थे और यमराज के दूतों के लिये भी यमराज के दूत थे।

एक बार रात में जब जोर से वर्षा हो रही थी, तब वे लोग चोरी करके नगर के बाहर एक बगीचे में धन का बँटवारा कर रहे थे। उसी बीच उन लोगों में आपसी झगड़ा हो गया। कुछ देर बार झगड़ा बन्द करके उन्होंने शराब मँगाई और पीने लगे। झगड़े के कारण उनके मन में क्रोध तो समाया ही हुआ था, शराब पीकर वे परस्पर में मुक्का और लट्ठम-लट्ठा करने लगे। उनमें से धूर्तिल नामक चोर के सिवा सब मर गये। धूर्तिल का यह नियम था कि यदि उसे किसी दिन किसी महामुनि के दर्शन होते थे तो उस दिन के लिये वह एक व्रत ले लेता था। अतः उस दिन उसे महामुनि के दर्शन हुए थे और उसने उस दिन शराब नहीं पीने का व्रत ले लिया था। इसी नियम से वह बच गया था।

इस घटना के बाद वह धूर्तिल दुःखों के इस मूल संसार से विरक्त हो गया और दिगम्बर मुनि के पास पहुँचकर व्रतों को लेकर अपनी आत्मसाधना में लग गया। देखो, कहाँ तो सन्यासी, जो कि शराबियों की संगति से दुर्गति में गये और कहाँ यह चोर जो कि गुरू के दर्शन के निमित्त से मरने से बचकर आत्महित में लगकर उत्तमगति का भाजन हुआ।

विनोद—अच्छा गुरूजी! आज से मैं इन व्यसनी लड़कों की संगति से दूर रहूँगा।

रत्नसम्पदाएँ भी घातक हैं

कौशाम्बी नगर में एक वृद्धधन नाम का वैश्य रहता था। उसकी पत्नी का नाम कुरूविन्दा था। इस दम्पत्ति के एक कन्या तथा दो पुत्र थे, जिनके नाम अहिदेव और महीदेव थे। पिता की मृत्यु के बाद दोनों भाई जहाज में बैठकर अन्य द्वीप में गये। सूने में कोई हमारा धन चुरा न ले, इस भय से वे दोनों अपना सारभूत धन साथ ही ले गये। वहाँ सब बर्तन आदि बेचकर वे एक बहुत कीमती रत्न ले आये। वह रत्न दोनों भाईयों में से जिसके हाथ में जाता, वह दूसरे भाई को मारने की इच्छा करने लगता था। दोनों भाईयों ने अपने खोटे विचार एक दूसरे को बता दिये। उस रत्न से विरक्त हो, घर जाकर उसे माता को दे दिया। माता ने भी विष देकर अपने दोनों पुत्रों को मारने की इच्छा की। पुनः तत्क्षण ही उसे विवेक प्राप्त हो गया और उसने अपने पुत्रों को रत्न का दुष्परिणाम बताया। पुत्रों ने भी अपनी-अपनी बात माता को कह दी। तीनों ही उस रत्न से विरक्त हुए और उसे यमुना नदी में फेंक दिया।

उस रत्न को एक मछली ने निगल लिया था। उस मछली को धीवर पकड़ लाया और इन्हीं भाईयों के घर बेच गया। लड़की ने उस मछली को काटा तो उसे वह रत्न हाथ लग गया। लड़की के मन में भी माता तथा दोनों भाईयों को विष देकर मारने के भाव जाग्रत हो गये, परन्तु स्नेहवश पीछे शान्त हो गई। तब लड़की ने भी सारा समाचार माता को सुना दिया। चारों एक साथ बैठकर विचार करने लगे। यह रत्न कितना निकृष्ट है कि देखो जिसके हाथ में जाता है, उसी के मन में अपने प्राणसदृश माता और भाई को मारने के भाव उत्पन्न हो जाते हैं। ऐसी लक्ष्मी किस काम की? जो इस लोक में हिंसा और परलोक में दुर्गति का कारण हो। धिक्कार हो इस रत्न को! हमें यह रत्न नहीं चाहिये। ऐसा विचार करके उन लोगों ने पत्थर से उस रत्न को चूर-चूर कर दिया। अनन्तर चारों ने संसार, शरीर और भोगों से विरक्त होकर जैनेश्वरी दीक्षा ले ली।

इस कथानक से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि प्रायः करके धन आदि के लोभ से भाई-भाई बैरी हो जाते हैं। सन्तान माता-पिता को शत्रु समझकर उनका वध करने को तैयार हो जाते हैं। माता-पिता भी सन्तान को नष्ट करने की सोच सकते हैं।

आप प्रत्यक्ष में ऐसे अनेक उदाहरण देखते ही रहते हैं कि जहाँ पिता-पुत्र धन, मकान, दुकान आदि के लिये झगड़ते हैं और न्यायालय तक पहुँच जाते हैं। इतना ही नहीं, कई वर्षों तक मुकदमे आदि चलते रहते हैं, जिसमें लाखों रुपया बर्बाद हो जाता है जो कि न तो पिता के पल्ले पड़ता है और न पुत्रों के ही। वह तो अन्य किसी तीसरे लोगों को ही खाने को मिलता है। माता-पुत्रों में अशांति कलह देखी जाती है। पति-पत्नी में कलह मच जाती है जिससे गृहस्थ का सारा सुख धूल में मिल जाता है। भाई-भाई में बैर हो जाता है, तो प्रायः एक-दूसरे का मुख भी नहीं देखना चाहते हैं। बहन, भाईयों का सहज स्नेह समाप्त हो जाता है और एक-दूसरे के घर आना-जाना छोड़ देते हैं।

ऐसा धन इस लोक में ही नहीं, परलोक में भी नरक-निगोदों का कारण बन जाता है। जिस धन को महापरिश्रम करके कमाते हैं, उसकी चोर-डाकुओं से, स्वजनों, परिजनों से रक्षा करते हैं, वह धन भी यदि पाप-कार्यों में लगाया जाता है, जुआ, पर-स्त्री, मदिरा आदि के लिए काम आता है तो वह धन नरकों में अनन्त दुःखों को प्राप्त कराने वाला हो जाता है। इससे अतिरिक्त जो धन मात्र अपने खाने-पीने में, भोग-सामग्री में, ऐशो-आराम में खर्च जाता है, वह भी प्रायः तिर्यंच आदि योनि में ले जाने वाला है।

हाँ, जो धन देवपूजा में, तीर्थ यात्रा में, मन्दिर-मूर्ति आदि के निर्माण में लगाया जाता है, गुरूभक्ति में, आहारदान में, वसतिका निर्माण में, अन्य और भी सत्कार्यों में लगाया जाता है, वह इस लोक में सुख, यश, सम्पत्ति और संतति को बढ़ाने वाला होता है और परलोक में अनन्तगुणा होकर फलता है। जैसे कि बड़ का बीज देखने में बहुत छोटा होता है परन्तु उपजाऊ अच्छी जमीन में बोने से वृक्ष रूप में फलकर बहुत काल तक छाया देता है और मीठे-मीठे फल भी देता है।

इसी प्रकार से दीन, दुःखियों की सेवा-सुश्रूषा में खर्चा गया धन भी करुणादान है। उसका भी फल परलोक में स्वस्थ शरीर, अधिक आयु आदि की प्राप्ति होती है।

सत्पात्रों को आहार, औषधि, शास्त्र और अभयदान देने से उसका फल अचिन्त्य है। नियम से भोगभूमि के भोगों को देने वाला है और यदि दातार सम्यग्दृष्टि हैं तो निश्चित ही उनका वह अल्प दान भी स्वर्ग के वैभव को देकर कालान्तर में मोक्ष का कारण बन जाता है। इसीलिए धन को पाकर दान आदि

सत्कार्यों में लगाकर उसका सदुपयोग कर लेना चाहिये। कुत्सित दान, भोग या दुर्व्यसनों में लगाकर उसका दुरुपयोग नहीं करना चाहिये और इस सूक्ति को हमेशा ध्यान में रखना चाहिये–

"बहुधन बुरा हूँ भला कहिये लीन पर उपकार सों।"

बारह भावना

(कविवर भूधरदास जी कृत)

दोहा– **राजा राणा छत्रपति, हाथिन के असवार।**
मरना सबको एक दिन, अपनी-अपनी बार।।1।।
दल बल देवी देवता, मात पिता परिवार।
मरती बिरियां जीव को, कोई न राखनहार।।2।।
दाम बिना निर्धन दुःखी, तृष्णावश धनवान।
कहूँ न सुख संसार में, सब जग देख्यो छान।।3।।
आप अकेला अवतरै, मरै अकेलो होय।
यूँ कबहूँ इस जीव को, साथी सगा न कोय।।4।।
जहाँ देह अपनी नहीं, तहाँ न अपना कोय।
घर संपति पर प्रगट ये, पर हैं परिजन लोय।।5।।
दिपै चाम-चादर मढ़ी, हाड पींजरा देह।
भीतर या सम जगत में, अवर नहीं घिन-गेह।।6।।
सोरठा– **मोह-नींद के जोर, जगवासी घूमैं सदा।**
कर्म-चोर चहुँ ओर, सरवस लूटैं सुध नहीं।।7।।
सतगुरु देय जगाय, मोह-नींद जब उपशमै।
तब कुछ बनैं उपाय, कर्म-चोर आवत रुकैं।।8।।
दोहा– **ज्ञान-दीप तप-तेल भर, घर शोधै भ्रम छोर।**
या विध बिन निकसै नहीं, पैठे पूरब चोर।।9।।
पंच महाव्रत संचरण, समिति पंच परकार।
प्रबल पंच इन्द्रिय-विजय, धार निर्जरा सार।।10।।
चौदह राजु उतंग नभ, लोक पुरुष-संठान।
तामें जीव अनादितैं, भरमत हैं बिन ज्ञान।।11।।
धन कन कंचन राजसुख, सबहि सुलभकर जान।
दुर्लभ है संसार में, एक जथारथ ज्ञान।।12।।
जाँचे सुर-तरु देय सुख, चिंतत चिंता रैन।
बिन जांचै बिन चिंतये, धर्म सकल सुख दैन।।13।।

सच्चा दान

सुरेश–भइया नरेश! जिसको जो चीज अच्छी लगे उसको वह चीज दे देना, यही तो दान है?

नरेश–नहीं, नहीं, तुम्हें यह किसने बताया है कि किसी की रुचि की वस्तु देना दान है। हाँ, जिसके देने से अपना और लेने वाले का दोनों का हित होता है वही दान है। सुनो, मैं तुम्हें एक छोटी-सी कथा सुनाता हूँ।

पूर्व विदेह के पुष्कलावती देश में पुंडरीकिणी नाम की नगरी है। किसी समय वहाँ पर राजा मेघरथ राज्य करते थे। एक दिन वे आष्टाह्निक पर्व में उपवास करते हुए महापूजा करके जैनधर्म का उपदेश दे रहे थे कि इतने में काँपता हुआ एक कबूतर वहाँ आया और पीछे बड़े ही वेग से एक गिद्ध आया। कबूतर राजा के पास बैठ गया। तब गिद्ध ने कहा–"राजन्! मैं अत्यधिक भूख की वेदना से आकुल हो रहा हूँ, अतः आप यह कबूतर मुझे दे दीजिये। हे दानवीर! यदि आप यह कबूतर मुझे नहीं देंगे तो मेरे प्राण अभी आपके सामने ही निकल जायेंगे।" मनुष्य की वाणी में गिद्ध को बोलते देखकर युवराज दृढ़रथ ने पूछा–"हे देव! कहिये इस गिद्ध पक्षी के बोलने में क्या रहस्य है?" राजा मेघरथ ने कहा, सुनो–

इस जम्बूद्वीप के ऐरावत क्षेत्र में पद्मिनी खेट नाम का एक नगर है। वहाँ के धनमित्र और नन्दिषेण नाम के दो भाई धन के निमित्त से आपस में लड़कर मर गये, सो ये कबूतर और गिद्ध पक्षी हो गये हैं। इस गिद्ध के शरीर में देव आ गया है सो यह ऐसे बोल रहा है। वह कौन है? सो भी सुनो–

ईशानेन्द्र ने अपनी सभा में मेरी स्तुति करते हुए यह कहा कि पृथ्वी पर मेघरथ से बढ़कर दूसरा कोई दाता नहीं है। मेरी ऐसी स्तुति सुनकर परीक्षा करने के लिये एक देव वहाँ से आकर इसके शरीर में प्रविष्ट होकर बोल रहा है। किन्तु हे भाई! दान का लक्षण आप सभी को मैं समझाता हूँ, सो चित्त स्थिर करके उसे सुनो। स्व और पर के अनुग्रह के लिये जो वस्तु दी जाती है, वही दान कहलाता है।

जो शक्ति, विज्ञान, श्रद्धा आदि गुणों से युक्त होता है वह दाता कहलाता है और जो वस्तु देने वाले तथा लेने वाले, दोनों के गुणों को बढ़ाती है उसे देय

कहते हैं। ये देय आहार, औषधि, शास्त्र तथा समस्त प्राणियों पर दया करना, इस तरह से चार प्रकार का है, ऐसा श्री सर्वज्ञदेव ने कहा है अतः ये चारों ही शुद्ध देय हैं तथा क्रम से मोक्ष के साधन हैं। जो मोक्षमार्ग में स्थित हैं, अपने आपकी तथा दूसरों की संसार-भ्रमण से रक्षा करते हैं, वे पात्र कहलाते हैं। इससे अतिरिक्त माँस आदि पदार्थ देय नहीं हैं। इनकी इच्छा करने वाला पात्र नहीं है और इनका देने वाला दाता नहीं है। माँसादि वस्तु के पात्र और दाता ये दोनों तो नरक के अधिकारी हैं। कहने का सारांश यह है कि यह गिद्ध तो दान का पात्र नहीं है और कबूतर देने योग्य वस्तु नहीं है।

इस प्रकार से मेघरथ की वाणी सुनकर वह देव अपना असली रूप प्रगट कर राजा की स्तुति करने लगा और कहने लगा कि हे राजन्! तुम अवश्य ही दान के विभाग को जानने वाले दानशूर हो, ऐसी स्तुति करके वह चला गया। उन गिद्ध और कबूतर दोनों पक्षियों ने भी मेघरथ की कही सब बातें समझीं और आयु के अन्त में शरीर छोड़कर सुरूप तथा अतिरूप नाम के व्यंतर देव हो गये। तत्क्षण ही वे दोनों देव राजा मेघरथ के पास आकर स्तुति-वन्दना करके कहने लगे–हे पूज्य! आपके प्रसाद से ही हम दोनों कुयोनि से निकल सके हैं अतः आपका उपकार हमें सदा ही स्मरण करने योग्य है।

सुरेश–भइया नरेश! हमने तो एक दिन मन्दिर में कलेण्डर लगा हुआ देखा था जिसमें एक राजा कबूतर को एक पलड़े में बिठाकर और अपनी जाँघ का माँस काट-काटकर दूसरे पलड़े में रखकर वे गिद्ध को देने को तत्पर थे। किन्तु आप तो कह रहे हैं कि उन्होंने मात्र संबोधा, माँस नहीं दिया, सो इसमें कौन-सी बात सही है?

नरेश–सुरेश! मैंने तुम्हें यह इतिहास उत्तर पुराण के आधार पर सुनाया है अतः यह तो सही है, कलेण्डर सही नहीं है, क्योंकि जैन सिद्धान्त कभी भी किसी को माँस दान देकर खुश करने या स्वस्थ करने का विधान नहीं करता है और ये राजा मेघरथ इससे तीसरे भव में भगवान शान्तिनाथ हुए हैं।

सुरेश–अच्छा भइया! अब मैं स्वयं शास्त्रों का स्वाध्याय करूँगा जिससे कि सही जानकारी होती रहे।

1. उत्तरपुराण पर्व 63, टीका पृ. 193-194।

तीर्थ वन्दना

सुरेन्द्र–भैया नरेन्द्र! तुम आज बहुत दिन बाद दिखे। कहो तो इतने दिन से कहाँ थे?

नरेन्द्र–मैं तीर्थ यात्रा को गया था। मेरे माता-पिता हर वर्ष ही तीर्थ यात्रा को जाते हैं और वहाँ ठहरकर मुनि-आर्यिकाओं को आहार दान भी देते हैं और वन्दना भी करते हैं। अबकी बार वे हम सबको साथ ले गये थे।

सुरेन्द्र–अच्छा तो बताओ, आप कहाँ-कहाँ गये थे?

नरेन्द्र–सम्मेदशिखर, राजगृही, कुण्डलपुर, चंपापुरी, पावापुरी आदि तीर्थों की यात्रायें कीं और कई तीर्थों पर मुनिसंघों के दर्शन किये, उनका उपदेश सुना।

सुरेन्द्र–भाई! मुनियों को तीर्थ वन्दना का भाव भी हो जाये तो प्रायश्चित लेना चाहिये, ऐसा मैंने सुना है तो फिर मुनिगण तीर्थों की यात्रा कैसे करते हैं?

नरेन्द्र–नहीं बन्धु, ऐसी बात नहीं है, आपने जो सुना है वह गलत है। शास्त्रों में भी एक नहीं हजारों प्रमाण उपलब्ध हैं। मैंने मुनिराज के पास स्वाध्याय करने का नियम लिया है। अतः मैं आज ही पद्मपुराण से एक कथानक पढ़कर आया हूँ, सो मैं तुम्हें भी सुनाता हूँ, सुनो–

उदित और मुदित नाम के दो मुनिराज एक समय निर्वाण क्षेत्र की वन्दना की अभिलाषा रखते हुए सम्मेदाचल को जा रहे थे। किसी तरह मार्ग भूलकर एक महाअटवी में जा पहुँचे। आकस्मिक एक भील सामने से आ रहा था, उसने इन मुनिराजों को देखा। पूर्व-जन्म के कुछ बैर के कारण एकदम क्रोधित होकर उन्हें मारने के लिए उसने कठोर वाणी से अपने निकट बुलाया। दोनों मुनिराजों ने उसके क्रूर अभिप्राय को समझ लिया और शान्तचित्त हो वहीं के वहीं खड़े हो गये। बड़े भाई उदित मुनिराज ने मुदित नाम के छोटे मुनिराज से कहा, हे भाई! भयभीत मत हो, इस समय चित्त स्थिर करके समाधि धारण करो। दुष्ट आकृति वाला यह भील हम दोनों को मारने के लिये तत्पर दिखायी देता है। हम लोगों ने चिरकाल के अभ्यास से जिस क्षमा को समृद्ध बनाया है आज उसकी परीक्षा का अवसर है। मुदित मुनिराज ने बड़े भाई को उत्तर दिया कि–हे भाई! जिनेन्द्र देव के वचनों में स्थिर रहने वाले हम लोगों को किस बात का भय है? निश्चय ही हम लोगों ने भी कभी इसका वध किया होगा।

इस प्रकार वार्तालाप करते हुए दोनों भाई विचारपूर्वक खड़े हो गये और शरीर आदि से ममता छोड़कर प्रतिमायोग को धारण कर लिया। तदनन्तर मारने की इच्छा रखता हुआ वह भील उनके पास आया परन्तु दैवयोग से भीलों के सेनापति ने उसे देख लिया और समझा-बुझाकर उसे मुनियों की हत्या करने से मना कर दिया। तब वह क्रूर परिणामी म्लेच्छ भी शान्तचित्त होकर अपने स्थान को चला गया।

पुण्य के प्रभाव से उपसर्ग के टल जाने पर वे दोनों मुनिराज ध्यान विसर्जित करके आगे चले गये। कुछ दिन बाद वे दोनों मुनिराज सम्मेद शिखर पहुँच गये। वहाँ पहुँचकर उन्होंने अतीव भक्ति से जिनवन्दना की। इस प्रकार अनेक उत्तमोत्तम स्थानों में भ्रमण कर चिरकाल तक रत्नत्रय की आराधना करते हुए अन्त में मरण करके वे मुनि स्वर्ग में देव हो गये। कालान्तर में इन्होंने ही देशभूषण-कुलभूषण नाम के महामुनि होकर कुन्थलगिरि पर्वत से निर्वाण पद प्राप्त किया।

सुरेन्द्र—भैया नरेन्द्र! यह तो बताओ कि किस कारण से तो वह भील इन मुनिराजों को मारने के लिये तैयार हुआ? और किस कारण से भील के सेनापति ने उसे रोककर मुनियों की रक्षा की?

नरेन्द्र—हाँ सुनो, मैं तुम्हें यह भी सुनाता हूँ। वसुभूति नाम के ब्राह्मण ने दुष्टचित्त होकर इन उदित और मुदित के पिता का वध कर डाला। इस निमित्त से कुपित होकर उदित ने अपने भाई से सलाह कर उस ब्राह्मण को भी मार डाला। वह दुष्ट ब्राह्मण मरकर भील हो गया। इधर किसी एक दिन मतिवर्धन नाम के आचार्य अपने चतुर्विध संघ सहित वहाँ पधारे। उनके उपदेशों को सुनकर गृह भोगों से विरक्त होकर इन उदित और मुदित ने जैनेश्वरी दीक्षा ले ली।

वही भील इन दोनों को देखकर पूर्वभव के बैर से कुपित होकर मारने को तैयार हुआ था तथा जिसने रक्षा की थी वह कौन था? उसका भी इतिहास सुनिये—

यक्षस्थान नामक नगर में सुरप और कर्षक नाम के दो भाई रहते थे। एक दिन एक शिकारी किसी पक्षी को पकड़कर उस गाँव में ले आया। अतः दया से युक्त होकर सुरप और कर्षक ने उस शिकारी को कुछ धन देकर उस पक्षी

को छुड़ा लिया। कुछ काल के बाद आयु पूरी कर वह पक्षी मरकर इन भीलों का राजा हो गया तथा सुरप और कर्षक अपने सदाचार के निमित्त से आयु पूरी करके मरकर पद्मिनी नगर के राजा के अमृतस्वर नामक राजदूत के पुत्र हो गये।

चूँकि पूर्व भव में इन दोनों भाइयों ने उस पक्षी को शिकारी के हाथ से छुड़ाकर उसकी रक्षा की थी। इसी निमित्त से उस पक्षी का जीव भील का सेनापति होकर मुनि अवस्था में इन दोनों की रक्षा करने में निमित्त बन गया। देखो मित्र! जो इस भव में किसी भी प्राणी की रक्षा करता है, वह प्राणी भी किसी भव में उसकी रक्षा करता है। इस संसार का ऐसा ही नियम है।

सुरेन्द्र—बंधुवर! आपने मुझे आज बहुत ही सुन्दर कथा सुनाई है। इससे हमें दो शिक्षाएँ मिलती हैं। एक तो मुनिराज चतुर्थ काल में भी सम्मेद-शिखर आदि तीर्थों की वन्दना किया करते थे, इसीलिए तीर्थों की यात्रा करना महान पुण्य का कार्य है। दूसरी बात यह है कि हमेशा ही पशु-पक्षियों आदि किसी भी प्राणी की रक्षा का भाव रखना चाहिये। यदि कदाचित् प्रसंग आये तो धन आदि देकर भी अनाथ जीवों की रक्षा करनी चाहिये।

नरेन्द्र—हाँ बन्धु! आपने सही शिक्षा ग्रहण की है। अब तो यह नियम कर लो कि अवश्य ही पद्म-पुराण का स्वाध्याय करेंगे। देखो! यह कथा पद्म-पुराण के 39वें पर्व में आई है। यह पुराण बहुत ही कथाओं के भण्डार हैं इसलिये ये बोधि और समाधि के निधान अर्थात् खजाना माने गये हैं।

सुरेन्द्र—अच्छा मित्र! मैं आज नियम करता हूँ कि प्रतिदिन देवदर्शन करके स्वाध्याय करूँगा तथा सबसे प्रथम तो मैं पद्म-पुराण को ही पढ़ूँगा।

आज्ञा पालन कहाँ उचित

कमल कुमार–हे भगवन्! कल मेरा उपवास था। पिताजी ने बहुत ही जबरदस्ती मुझे सिनेमा देखने भेजा। मेरी इच्छा नहीं थी, फिर भी पिताजी की आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सका। ऐसे समय में क्या करना चाहिये? और आज मुझे जबरदस्ती कोका-कोला पिला दिया।

मुनिराज–बेटा कमल! जिस कारण अपने जीवन में चरित्र की कमी आये या धर्म की हानि हो, ऐसे प्रसंग में माता-पिता की आज्ञा पालन करने से कोई महत्त्व नहीं है। देखो, मैं तुम्हें एक कथा सुनाता हूँ–

विद्याधर कुल में अरविन्द नाम का एक राजा था। उसके हरिश्चन्द्र और कुरुविंद नाम के दो पुत्र थे। राजा ने बहुत आरम्भ और परिग्रह के निमित्त से उत्पन्न हुए रौद्र ध्यान से नरकायु का बन्ध कर लिया था।

किसी समय उस राजा को दाहज्वर उत्पन्न हो गया। उस राजा को लालकमल से सुवासित जल, पंखों की शीतल हवा, मणियों के हार, चन्दन का लेप आदि शान्ति नहीं दे सके। संताप बढ़ता ही गया। उसके पुण्य के क्षीण हो जाने से सारी विद्यायें भी उसे छोड़कर चली गईं। एक दिन राजा ने हरिश्चन्द्र पुत्र से कहा कि तुम अपनी आकाशगामिनी विद्या से मुझे उत्तरकुरू भोग-भूमि में सीतोदा के तट पर भेज दो किन्तु हरिश्चन्द्र की वह विद्या भी उसके पुण्य क्षीण हो जाने से उसे वहाँ भेजने में समर्थ नहीं हो सकी। पिता की बीमारी असाध्य होने से वह किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो गया।

अनन्तर किसी दिन दो छिपकली आपस में लड़ रही थीं। लड़ते-लड़ते एक की पूँछ कट जाने से उसके खून की बूँद राजा के शरीर पर आकर पड़ी। उन खून की बूँदों से उस जगह उसका शरीर ठण्डा हो गया तथा व्यथा शान्त हो गई। उसने सोचा–यही अच्छी औषधि है। पुत्र को बुलाकर बोला–"हे पुत्र! तुम मेरे लिये शीघ्र ही खून की एक बावड़ी तैयार कराओ।" राजा अरविन्द को विभंगावधिज्ञान था। उसने ज्ञान से विचार करके कहा कि–"इसी समीपवर्ती वन में अनेक प्रकार के मृग हैं। उन्हें मारकर तू बावड़ी भर दे।" पिता के ऐसे वचन सुनकर कुरुविंद राजा पाप से डरता हुआ पिता की आज्ञा पालने में असमर्थ रहा और चुपचाप वहाँ से हटकर किन्हीं अवधिज्ञानी मुनिराज के पास जाकर सारी बातें कह दीं।

मुनिराज ने बताया कि तुम्हारे पिता की मृत्यु निकट है। उसे नरक आयु का बंध हो गया है। ऐसा सुनकर उस कुरुविन्द कुमार ने पिता को सन्तुष्ट करने हेतु लाख के लाल रंग से बावड़ी भर दी। राजा ने उसमें खुशी-खुशी उतरकर मज्जन किया, परन्तु कुल्ला करते ही उसे मालूम हो गया कि यह कृत्रिम रुधिर है। यह समझते ही पाप से प्रेरित होकर वह राजा शीघ्र ही क्रोधित हो तलवार निकालकर पुत्र को मारने को दौड़ा कि इसी बीच वह इस तरह गिरा कि उसी की तलवार से उसका हृदय विदीर्ण हो गया तथा वह मरकर नरक-गति में चला गया। अतः अनुचित कार्य में बड़ों की आज्ञा का पालन नहीं करना चाहिये इसी में हित है।

कमल कुमार–हे गुरूवर! जब उस राजा को विभंगावधिज्ञान हो गया था तब उसे पापी कैसे कहा गया?

मुनिराज–देखो कमल! कुअवधिज्ञान होने से कोई पुण्यात्मा नहीं माने जाते हैं। नरक में तो सभी मिथ्यादृष्टि नारकियों को कुअवधि होती है। उससे वे और भी अनेकों पाप कार्यों में और बैरभाव में ही प्रवृत्ति करते हैं, सत्कार्यों में नहीं। उस राजा को जिस प्रकार से वन में रहने वाले मृग दिख रहे थे, उसी प्रकार से वन में विराजमान मुनिराज नहीं दिखते थे। सचमुच में मिथ्यात्व के निमित्त से जीवज्ञान विपरीत और दुःखदायी होता है। कहा भी है–दूसरे के उपदेश के बिना ही विष, यन्त्र, कूट, पंजर तथा बन्ध आदि के विषय में बुद्धि-प्रवृत्ति होती है, उसको कुमतिज्ञान कहते हैं।[1]

जिसके खाने से जीव मर जाये वह विष है। भीतर घुसते ही किवाड़ बन्द हो जायें उसे यन्त्र कहते हैं। जिससे चूहे आदि पकड़े जायें वह कूट है। रस्सी में गाँठ लगाकर जो जाल बनाया जाता है वह पंजर है। हाथी आदि को बाँधने के लिये जो गड्ढे किये जाते हैं वह बन्ध है। इत्यादि कार्यों में दूसरों के उपदेश के बिना जो बुद्धि प्रवृत्त होती है वह सब कुमतिज्ञान का माहात्म्य है। ऐसे ही चोर-शास्त्र, हिंसा-शास्त्र, काम-शास्त्र (उपन्यास) आदि को बनाने में या उपदेश देने में जो प्रवृत्ति होती है वह कुश्रुतज्ञान है। आज इसका खूब ही विस्तार है।

कमल कुमार–गुरूवर! सम्यक्त्व का बड़ा ही माहात्म्य है। जिसके प्रगट होते ही जीव के सभी कुज्ञान सम्यग्ज्ञान बन जाते हैं और वे संसार से पार करने वाले होते हैं। मैं अपने सम्यक्त्व को सदैव निर्दोष रखने का प्रयत्न करूँगा।

1. विस-जंत-कूड-पंजर-बंधादित् विणुवएस करणेण।
   जा खलु पवट्टई मई अण्णाणंति तं वेंति।।303।। गोम्मटसार जीवकाण्ड।

दिगम्बर मुनि किसी का दोष प्रकट नहीं करते

कमल—भाई विमल! मेरे पड़ोस में एक सेठ रहते हैं। वे हमेशा दिगम्बर जैन मुनियों की निन्दा करते हैं। हमें तो अच्छा नहीं लगता है।

विमल—कमल! जो दिगम्बर जैन मुनियों की निन्दा करते हैं वे महापाप का संचय कर लेते हैं, इसमें कोई सन्देह नहीं है। फिर भी साधु तो निन्दा से घबराते नहीं हैं। एक बार मैं एक बड़े आचार्य के संघ में किसी मुनि के पास बैठा था। एक सज्जन ने कहा कि अमुक व्यक्ति संघ की खूब निन्दा करता है। मुनिराज ने कहा—तो क्या हुआ। आजकल के लोग तो मुँह से ही निन्दा करके शान्त हो जाते हैं, पूर्व में तो साधुओं पर अकारण ही घोर उपसर्ग आया करते थे। पुनः उन्होंने एक कथा सुनाई थी जो इस प्रकार है—

कौशाम्बी नगर में राजा गंधर्वसेन न्याय-नीतिपूर्वक राज्य करते थे। वहाँ पर एक अंगारदेव नाम का वैश्य रहता था। वह उच्च कुलीन था फिर भी रत्नों की जड़ाई का काम करने से सुनार कहलाता था। एक दिन वह अंगारदेव राजमुकुट के एक बहुमूल्य मणि को उजाल रहा था। इसी समय उस गली में एक मेदज नाम के महामुनि चर्या के लिये आ गये। अंगारदेव ने बाहर निकलकर उनका पड़गाहन किया और उन्हें बिठाकर आप किसी कार्यवश अन्य कमरे में चला गया। जिस महामणि को पहले उजाल रहा था वह वहीं मुनि के पास ही रखी थी।

इधर एक क्रौंच पक्षी आया और उस मणि को माँस का टुकड़ा समझकर निगल गया। मणि न देखकर अंगारदेव घबरा गया। वह मुनि से पूछने लगा—"भगवन्! मैंने यहीं पर एक राजमुकुट की महामणि रखी थी, वह कहाँ गई?" मुनिराज मौनस्थ थे। तब वह गिड़गिड़कर कहने लगा—"हे गुरूदेव! वह राजा के मुकुट की मणि है। यदि मैं उसे वापस नहीं दूँगा, तो वह मुझे परिवार सहित कारावास में डालेंगे या मुझे मृत्युदण्ड देंगे या क्या अनिष्ट करेंगे सो मैं नहीं कह सकता हूँ। अतः आप कृपया उस मणि को बता दीजिये।" मुनिराज मौन धारण किये बैठे ही रहे। तब उसकी आशंका और भी बढ़ गयी और उसने कहा कि—"मुनिराज! आपके सिवा यहाँ पर अभी अन्य कोई आया भी नहीं है जो कि

उस मणि को चुराकर ले जा सके। अतः आपको ही उसका हाल विदित है, अतः आपको बताना ही पड़ेगा।"

तब मुनिराज सर्वथा ही चुप रहे और उपसर्ग समझकर वहाँ से उठकर जाने में असमर्थ रहे। तब अंगारदेव ने एक लकड़ी उठाई और मुनिराज को ही चोर समझकर उन्हें पीटना शुरू कर दिया। मुनिराज उपसर्ग दूर होने तक आहार का और शरीर का ममत्व का त्याग करके तत्त्वस्वरूप का चिंतवन करने लगे। वह मुनि को रस्सियों से बाँधकर उन्हें लकड़ी से पीटता ही जा रहा था। मुनिराज अपनी आत्मा को शरीर से भिन्न समझकर आत्मस्वरूप का चिंतवन ही कर रहे थे। वह लोभी दुष्टात्मा उनको मार ही रहा था।

इसी बीच में सामने के वृक्ष पर वह पक्षी बैठा हुआ था। इस मूढ़ अंगारदेव की लकड़ी उछलकर उसके गले में जा लगी। उस क्रौंच पक्षी के गले में वह मणि अटकी हुई थी, नीचे नहीं उतरी थी। लकड़ी की चोट से वह मणि उसकी चोंच से निकलकर बाहर आकर नीचे गिर पड़ी। इस दृश्य को देखकर वह पापी अंगारदेव आश्चर्यचकित हो गया और मुनिराज को निर्दोष समझकर महान पश्चात्तप से आहत होकर उनके चरणों में गिर पड़ा। गला फाड़-फाड़कर रोने लगा। मुनिराज की रस्सियों को खोलकर उनके शरीर में लगे हुए चोट के घाव को धोकर उनका उपचार करने लगा। बार-बार मुनिराज से अपने किये हुए अपराधों की क्षमा याचना करने लगा।

कमल—भाई विमल! आपका कहना सच है जो ऐसे निर्दोष दिगम्बर साधुओं की निन्दा करते हैं, कष्ट देते हैं, वे महापाप का ही बन्ध करते हैं।

विमल—हाँ भाई! साधुओं का तो क्या, अन्य किसी भी धर्मात्मा की भी निन्दा कभी नहीं करनी चाहिये। न ही किसी को कुछ कष्ट ही पहुँचाना चाहिये।